मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 142 ● वर्ष 15, अंक 6 ● सितम्बर 2025 ● दस रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

अमेरिकी टैरिफ़ बढ़ने के बाद कपड़ा उद्योग में बढ़ रही मज़दूरों की छँटनी 5

फ़िलिस्तीन की आज़ादी के हक़ में दुनियाभर के इंसाफ़पसन्द नागरिक और मज़दूर सड़कों पर 7

पंजाब की मेहनतकश जनता को प्रवासियों के खिलाफ़ भड़काने वालों से सावधान रहना होगा! 11

लद्दाख से लेकर उत्तराखण्ड तक, नेपाल से लेकर बंगलादेश तक नयी युवा पीढ़ी का सड़कों पर उबलता रोष, लेकिन

क्या स्वत:स्फूर्त विद्रोह पर्याप्त है?

हम मज़दूर जानते हैं कि दुनिया भर में एक उथल-पुथल मची हुई है। एक ओर फ़िलिस्तीन की आज़ादी का सवाल तमाम देशों में हज़ारों की संख्या में मज़दूरों, छात्रों-युवाओं और नागरिकों को सड़कों पर उतार रहा है, न सिर्फ़ इज़रायल की हत्यारी सेटलर औपनिवेशिक सत्ता के चरित्र के बारे में उनकी आँखें खोल रहा है बल्कि सभी पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों में उनके अपने शासक वर्ग के हत्यारे चरित्र के बारे में भी उनकी आँखें खोल रहा है; वहीं दूसरी ओर, आर्थिक संकट के दौर में दुनिया के कई अन्य देशों में भी बढ़ती आर्थिक असमानता, महँगाई, बेरोज़गारी, ग़रीबी के कारण पैदा जनअसन्तोष के कारण वहाँ के शासक वर्गों की सत्ता की वैधता ख़तरे में पड़ गयी है। संकट के दौर में शासक वर्ग के विभिन्न धड़ों के बीच के अन्तरविरोध बढ़ रहे हैं और इसी के चलते भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद के तमाम मसले जनता के सामने आ रहे हैं। जनता के बढ़ते असन्तोष से घबरायी ये पूँजीवादी सत्ताएँ जनता के दमन को बढ़ा रही हैं, उनके जनवादी अधिकारों को छीन रही हैं, सोशल मीडिया प्रतिबन्ध आदि लगा रही हैं, लेकिन संकट के दौर में ये क़दम इन शासक वर्गों की सत्ता के वर्चस्व को और भी ज़्यादा कमज़ोर बना रहे हैं।

सम्पादकीय अग्रलेख

नेपाल में कहने के लिए सोशल मीडिया बैन के मसले पर नौजवान सड़कों पर उतरे और जल्द ही इस स्वत:स्फूर्त उभार ने देश के अच्छे-ख़ासे हिस्से को अपनी ज़द में ले लिया। नतीजा यह हुआ कि कुछ दिनों में ही ओली सरकार पलट गयी और इस समय वहाँ एक भूतपूर्व महिला जज सुशीला कार्की ने अन्तरिम सरकार की बागडोर सम्भाल ली है। तीन वर्ष पहले श्रीलंका में भी व्यापक जनअसन्तोष के फलस्वरूप पैदा हुआ जनउभार ने राजपक्सा सरकार को गद्दी छोड़ने को मजबूर कर दिया और उसके परिणामस्वरूप वहाँ जनता विमुक्ति पेरामुना की दिस्सानायके सरकार सत्ता में आयी थी। पिछले साल बंगलादेश में भी छात्रों-युवाओं के विद्रोह के नतीजे के तौर पर शेख़ हसीना की दमनकारी और भ्रष्ट सरकार ज़मींदोज़ कर दी गयी और उसकी जगह अर्थशास्त्री व बैंकर मुहम्मद युनुस की सरकार अस्तित्व में आयी। इसी बीच इण्डोनेशिया और फिलिप्पींस से भी जनअसन्तोष और छात्रों-युवाओं के आन्दोलनों की ख़बरें आ रही हैं।

संक्षेप में, दक्षिण एशिया के कई देशों में वैश्विक आर्थिक संकट के दौर में बढ़ती आर्थिक असमानता, बेरोज़गारी, ग़रीबी, भूख, बेघरी, अशिक्षा, महँगाई और बढ़ती आर्थिक और सामाजिक असुरक्षा और अनिश्चितता के कारण व्यापक जनता में भारी असन्तोष है और अब कई देशों में वह फूटकर सड़कों पर भी आ रहा है। अगर लम्बी दूरी में देखा जाय तो यह प्रक्रिया वैश्विक स्तर पर 2008-09 से ही जारी है। अमेरिका में ऑक्युपाई वॉल स्ट्रीट आन्दोलन,

(पेज 9 पर जारी)

नेपाल में युवाओं की बग़ावत के बाद केपी शर्मा ओली की भ्रष्ट सत्ता का पतन

नेपाल की क्रान्तिकारी ताक़तों के सामने इस विद्रोह को क्रान्ति की दिशा में मोड़ने की चुनौती

● आनन्द

नेपाल में गत 8-9 सितम्बर को हुई युवाओं की बग़ावत से वहाँ की राजनीति में भूचाल-सा आ गया है। इस भूचाल में केपी शर्मा ओली की पूँजीवादी निरंकुश सत्ता औंधे मुँह गिर पड़ी। पुलिस द्वारा इस आन्दोलन का बर्बर दमन करने की वजह से कुल मिलाकर 70 से ज़्यादा लोगों की मौत हो गयी और 500 से ज़्यादा लोग घायल हो गये। 9 सितम्बर को युवाओं की इस बग़ावत में नेपाली समाज की अन्य ताक़तें भी शामिल हो गयीं और उस दिन संसद भवन, प्रधानमन्त्री निवास, सचिवालय सहित शहर की कई इमारतों में आग लगा दी गयी। इस आगजनी में युवा आन्दोलनकारियों के अलावा कई अन्य ताक़तों के शामिल होने की वजह से नेपाल और भारत के कई हलक़ों में इस पूरे घटनाक्रम को षडयन्त्र के रूप में देखा जा रहा है और क़िस्म-क़िस्म के षडयन्त्र सिद्धान्तों का बाज़ार गर्म है। भारत की गोदी मीडिया ने भी षडयन्त्र की कहानी बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। इस घटना के कुछ दिनों के भीतर ही नेपाली सेना ने हालात को क़ाबू में कर लिया और सेनाध्यक्ष ने आन्दोलनकारी युवाओं के साथ मध्यस्थता करके पूर्व मुख्य न्यायाधीश सुशीला कार्की के नेतृत्व में अन्तरिम सरकार बनवा दी। इस प्रकार नेपाल के शासक वर्ग ने इस युवा विद्रोह को जनक्रान्ति में तब्दील होने से रोकने में फ़िलहाल सफलता प्राप्त कर ली है। हालाँकि आने वाले दिनों में वहाँ राजनीतिक अनिश्चितता बनी रहने वाली है। भारत के मज़दूरों को भी हमारे पड़ोसी देश में हुए इस नाटकीय घटनाक्रम को गहराई से समझने की ज़रूरत है।

8 सितम्बर को काठमांडू, बिराटनगर, पोखरा, बुटवल, चितवन सहित नेपाल के कई शहरों और क़स्बों में नेपाली युवा ओली सरकार द्वारा फ़ेसबुक, इंस्टाग्राम, ट्विटर, यूट्यूब, व्हाट्सऐप सहित 26 सोशल मीडिया ऐप्स पर प्रतिबन्ध लगाने के विरोध में और भ्रष्टाचार तथा भाई-भतीजावाद एवं बढ़ती आर्थिक असमानता के विरोध में सड़कों पर थे। इस स्वत: स्फूर्त आन्दोलन का काठमांडू पुलिस द्वारा बर्बर दमन किया गया और शाम तक पुलिस की गोली से 19 छात्रों व युवाओं की मृत्यु की ख़बरें मीडिया में आने लगीं। उसी रात सरकार ने सोशल मीडिया पर लगाया गया प्रतिबन्ध वापस ले लिया। ऐसे में सोशल मीडिया पर 19 मासूमों की मृत्यु की ख़बरें और तेज़ी से फैलने लगीं जिसकी वजह से जनाक्रोश की आग और तेज़ी से भड़क उठी। अगले

(पेज 8 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

झूठ फैलाने वाले नहीं सच बताने वाला अख़बार पढ़ो

बहुत से लोगों के हर दिन की शुरुआत बीते कल की घटनाओं को जानने की उत्सुकता के साथ शुरू होती है। लेकिन आज-कल के अखबारों को देख जाइए, मेहनतकश जनता की रोज़मर्रा की समस्याओं या समाज के लिए उपयोगी ख़बरें ढूँढे से भी नहीं मिलेंगी। हाँ, साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देने वाली मनगढ़न्त ख़बरें और हिन्दुत्व व नफ़रत के मसाले डालकर पकाई गई ज़हरीली कहानियाँ इसके पन्नों पर भरी रहती हैं। अख़बारों का यह चरित्र धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक देश कहलाने वाले भारत के लोकतंत्र के चौथे खंभे की ढोल की पोल खोल देता है।

एक दिन इलाहाबाद के एक प्रमुख हिन्दी अख़बार के मुख्य पृष्ठ (पूरा पेज) की शुरुआत इन लाइनों से थी – "भारतवर्ष के हिन्दू राष्ट्र के रूप में स्थापित होने की जन मंगल कामना एवं हिन्दू समाज के जन कल्याण हेतु माँ भगवती का शतचण्डी यज्ञ एवं अनुष्ठान" (व्यक्ति और कार्यक्रम स्थल के नाम के साथ)।

मुख्यधारा की चाटुकार पत्रकारिता के इस काले समय में आज आम मेहनतकश आबादी से जुड़े मुद्दे जैसे बेरोज़गारी, महँगाई, संगठित और असंगठित क्षेत्र में काम करने मज़दूर आबादी की समस्याओं, निजीकरण, छात्र-युवा विरोधी नई शिक्षानीति, बढ़ते स्त्री अपराध और अन्य सामाजिक मुद्दों पर विस्तृत खबरें और लेख 'मज़दूर बिगुल' अखबार में होते हैं, इससे लगता है कि सत्ता के तलवाचाट अखबारों के बीच 'मज़दूर बिगुल' अख़बार ही मेहनतकश आबादी का अपना अखबार है।

इसे पढ़ते हुए मुझे आज के समाज की समस्याओं और उन्हें हल करने के असली रास्ते को समझने काफी मदद मिली। इस लोकतंत्र के तीसरे और चौथे खंभे यानी न्यायपालिका और मीडिया की स्वतंत्रता और निष्पक्षता की असलियत पर विस्तृत रूप से चर्चा करने के लिए मज़दूर बिगुल के सम्पादक मंडल का बहुत-बहुत आभार और उम्मीद है कि आने वाले समय में भी मज़दूर बिगुल अखबार मेहनतकश के प्रति अपने कर्तव्य का पूर्ण रूप से निर्वहन करता रहेगा।

– अम्बरीश, गोरखपुर

एकजुट होना होगा

मज़दूर भाइयों! अगर हम एकजुट नहीं हुए तो ये कम्पनियाँ प्रशासन के साथ मिलीभगत करके यूँ ही हमारा शोषण करती रहेंगी। सभी साथियों से मेरी प्रार्थना है कि एकजुट हो जाओ। अगर हम ऐसा नहीं करेंगे तो मज़दूर का और अधिक शोषण होगा। सभी साथियों से प्रार्थना है कि सभी साथी एकजुट होकर संघर्ष करें, संघर्ष कभी व्यर्थ नहीं जाता। इंक़लाब ज़िन्दाबाद, लाल सलाम साथियो!

– आपका एक मज़दूर साथी!

मज़दूर बिगुल डाक से न पहुँचने की शिकायतों के बारे में

हमें 'मज़दूर बिगुल' के कई नियमित पाठकों की ओर से अक्सर ऐसी शिकायतें मिल रही हैं कि अख़बार की प्रति उन्हें मिल ही नहीं रही है या अनियमित मिल रही है। ऐसे साथियों से आग्रह है कि वे एक बार अपने निकटतम डाकघर में लिखित शिकायत दर्ज करायें और उसकी प्रति हमें भी ईमेल या व्हाट्सएप पर भेज दें, ताकि हम जिस डाकघर से अख़बार पोस्ट करते हैं, वहाँ भी शिकायत दर्ज करा सकें।

पिछले काफ़ी समय के अनुभव और डाक विभाग के ही अनेक कर्मचारियों व अधिकारियों से बात करने के आधार पर यह स्पष्ट है कि यह सरकार जानबूझकर डाक विभाग की जनसेवाओं को नष्ट कर रही है ताकि इसके भी बड़े हिस्से को निजीकरण की ओर धकेला जा सके। एक तरफ़ सेवाओं के दाम बढ़ाये जा रहे हैं, दूसरी ओर नयी भर्तियाँ नहीं करने, ठेकाकरण बढ़ाने और डाकिये सहित तमाम कर्मचारियों पर काम का बोझ बढ़ाते जाने से भी सेवाएँ प्रभावित हो रही हैं।

'बिगुल' जैसे जनपक्षधर पत्र-पत्रिकाओं और हमारे पाठकों के लिए इससे कठिनाइयाँ बढ़ गयी हैं लेकिन हम पूरी कोशिश कर रहे हैं कि आप तक अख़बार पहुँचता रहे। इसमें हमें आपका भी सहयोग चाहिए।

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – **लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

प्रिय पाठको,

अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया इसकी सदस्यता लें और अपने दोस्तों को भी दिलवाएँ। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं। या फिर QR कोड स्कैन करके मोबाइल से भुगतान कर सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल,
द्वारा जनचेतना,
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787,
IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

QR कोड व UPI

UPI: bigulakhbar@okicici

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 8853476339 (व्हॉट्सऐप)
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं।
मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर नि:शुल्क पढ़ा जा सकता है।
आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

अपने कारख़ाने, वर्कशॉप, दफ़्तर या बस्ती की समस्याओं के बारे में, अपने काम के हालात और जीवन की स्थितयों के बारे में हमें लिखकर भेजें। आप व्हॉट्सएप पर बोलकर भी हमें अपना मैसेज भेज सकते हैं। नम्बर है : 8853476339

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ-226016 फ़ोन: 8853476339
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 9289498250
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 10/- रुपये वार्षिक – 125/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये

देशभर में बाढ़, बादल फटने, भूस्खलन और जलभराव की मार झेलती मेहनतकश अवाम!

जनता पर पड़ी इस आपदा के लिए केन्द्र की मोदी सरकार, राज्य सरकारें और समूची पूँजीवादी व्यवस्था ज़िम्मेदार है!

● अरविन्द

मौजूदा मानसून सत्र भारत के विभिन्न इलाक़ों के लोगों पर पहले से भी कहीं बड़े कहर के रूप में टूटा है। देश के अलग-अलग क्षेत्रों में जन-जीवन बुरी तरह से अस्त-व्यस्त हो गया है। उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश, जम्मू कश्मीर, मिजोरम आदि के पहाड़ी क्षेत्रों में बादल फटने व भूस्खलन के कारण सड़कें-इमारतें व बस्तियाँ धराशायी हो गयीं। पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, बिहार, झारखण्ड, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, केरल, आन्ध्रप्रदेश, असम, मिजोरम आदि जैसे क्षेत्रों में नदियाँ-नहरें अपने तटबन्धों को तोड़कर रिहायशी क्षेत्रों में घुस गयी। जलनिकासी की दुर्व्यवस्था के चलते बारिश का पानी सीवरेज के पानी के साथ मिल गया और लोगों की रसोई तक घुस गया। आकाशीय बिजली और आँधी-तूफान भी जान-माल के नुकसान का कारण बने। कई इलाक़ों के शहर-गाँव, खेत-खलिहान बाढ़ और जलभराव से बुरी तरह ग्रसित हो गये।

'डाउन टू अर्थ' नामक संस्था के अनुसार मौजूदा मानसून सत्र में बाढ़, बारिश व बादल फटने और जलभराव जैसी स्थिति के कारण अब तक 3,500 से अधिक लोगों की जान जा चुकी है। लाखों लोगों के घर डूब गये और उन्हें विस्थापित होने को मज़बूर होना पड़ा। इस दौरान लाखों हेक्टेयर खड़ी फसल पानी में समा गयी और लोगों के पालतू पशु तक बाढ़ में बह गये। बहुतों की उम्र भर की कमाई कुछ ही क्षणों में ख़त्म हो गयी। अब अगर बाढ़ का पानी उतर भी जायेगा तो भी निचले इलाक़ों से इसके सूखने में ख़ासा वक़्त लगेगा। बारिश के मौसम में आम होने वाली डेंगू, मलेरिया, चिकनगुनिया, हैज़ा, टायफ़ाईड और पीलिया जैसी बीमारियाँ बाढ़ग्रस्त इलाक़ों में और भी ख़तरनाक ढंग से फ़ैलती हैं।

मोदी सरकार और राज्य सरकारें समय रहते चेत जातीं, बाँधों और नहरों के बीच सही सामंजस्य होता, जल निकासी और 'सीवरेज सिस्टम' की उचित व्यवस्था होती और पर्यावरण को इस क़दर तबाह न किया गया होता तो बिल्कुल मुमकिन था कि विनाश के मौजूदा ताण्डव को घटित होने से रोका जा सकता था या जान-माल के नुकसान को कई गुणा तक कम किया जा सकता था।

आज जब देश के करोड़ों लोग जान-माल का भारी नुकसान झेल रहे हैं तब प्रधानमन्त्री मोदी पूँजीपतियों के प्रतिनिधि के तौर पर अलग-अलग देशों में टहल रहे हैं और बिहार के अपने चुनावी प्रचार में मशगूल हैं। उदाहरण के लिए पंजाब में बाढ़ के भयंकर हालात के दौरान जब मोदी जी को अपनी फजीहत

होती दिखी तो एक चक्कर यहाँ का लगा आये। और यहाँ भी उन्होंने आँकड़ों की बाजीगरी के अलावा कुछ भी नया नहीं किया। मुर्गी-बकरी तक के नुकसान की भरपाई के वायदे करने वाले पंजाब के लफ़्फ़ाज़ मुख्यमन्त्री भगवन्त मान और उनकी पार्टी के लोग ज़रूरत के समय लोगों को नज़र भी नहीं आये। पूरे देश में ही कमोबेश यही स्थिति रही। अब बाढ़ के बाद जारी हुई राशि की बन्दरबाँट कर ली जायेगी और बहुसंख्यक आम लोग मदद के लिए तरसते रह जायेंगे। फाइलों में बैठे बड़े अफसर और बड़े नौकरशाह नामक चूहे मोटे होते जा रहे हैं और जनता का हाल पूछने वाला कोई नहीं है।

शासन-सत्ता की प्राथमिकता में यदि आम लोगों की ज़िन्दगियाँ होती तो समय रहते स्थिति को सम्भाला जा सकता था। लेकिन केन्द्र और राज्य सरकारों को आडम्बरों से ही फ़ुरसत नहीं है। फ़ासीवादी मोदी सरकार से तो जनता का ख़याल रखने की उम्मीद ही आकाश कुसुम की अभिलाषा के समान है। इसे अदानी-अम्बानी जैसे धनपशुओं की तिजोरियाँ भरने और जनता को जाति-धर्म के नाम पर लड़ाने की नयी-नयी तरकीबें भिड़ाने से ही फ़ुर्सत नहीं है। हर बार की तरह इस मानसून सत्र ने भी यह साफ़ कर दिया है कि देश में जल निकासी और सीवरेज व्यवस्था किस कदर ख़स्ताहाल हैं। देश में बाढ़-सूखा और बीमारी जनता के जीवन को लील जाते हैं और टैक्स के रूप में हमसे ही लूटे गये पैसे को भ्रष्टाचार, नेताओं-नौकरशाहों और धन्नासेठों की अय्याशियों में उड़ा दिया जाता है। ऐसे हाल में बेबस लोग अपने ही डूबते घरों, जलमग्न फसलों और बिछुड़ते परिजनों को डबडबायी आँखों से देखते रह जाते हैं। मौजूदा मानसून सत्र के दौरान मची तबाही के बीच पंजाब, हरियाणा सहित देश के तमाम क्षेत्रों के लोग यदि अपना कुछ बचा पाये हैं तो वह ज़्यादातर एक-दूसरे की मदद के दम पर ही सम्भव हो पाया है।

बाढ़, भूस्खलन और अत्यधिक बारिश के कारण मची वर्तमान त्रासदी का कारण जलवायु परिवर्तन है और स्वयं इसका कारण सरकारों की जनविरोधी नीतियाँ और मुनाफ़े पर आधारित पूरी पूँजीवादी व्यवस्था है। जलवायु परिवर्तन के पीछे सबसे बड़ा कारण कुदरत की भयंकर लूट और पर्यावरण का विनाश है। अनियोजन, अराजकता और असमान विकास पूँजीवादी व्यवस्था के चारित्र में ही निहित होते हैं। मुट्ठीभर धन्नासेठों के मुनाफ़े की ख़ातिर जंगलों की कटाई, पहाड़ों का विनाश, अनियोजित उत्पादन और प्रदूषण ने पर्यावरण के पूरे तानेबाने को बिगाड़ कर रख दिया है। बेमौसमी बारिश, सूखा, बाढ़, आदि इसी के लक्षण हैं। पेड़ों और पहाड़ों की अन्धाधुन्ध कटाई के कारण बारिश का पानी भूस्खलन के साथ इमारतों और सड़कों को तहस-नहस करता हुआ बहुत तेज़ी के साथ नीचे आता है। सरकारी लापहरवाही और अफ़सरशाही के जनविरोधी चरित्र के कारण बाँधों और नहरों के बीच बिलकुल भी सामंजस्य नहीं है। पहाड़ों से उफ़नती नदियाँ बाँधों तक पहुँचकर उन्हें तोड़ डालती हैं या फिर बाँधों में एकत्रित हुए बेशुमार पानी को आनन-फ़ानन में नदियों और नहरों में छोड़ दिया जाता है। पंजाब, दिल्ली, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, बिहार, झारखण्ड, कर्नाटक आदि राज्यों में बाढ़ का बड़ा कारण बाँधों और बैराजों से छोड़ा गया अतिरिक्त पानी भी रहा। बाँधों और बैराजों का निर्माण ही इसलिए किया गया था ताकि बारिश और नदियों के पानी को नियन्त्रित और नियोजित किया जा सके लेकिन पूँजीवादी अनियोजन व अराजकता और नौकरशाही के निकम्मेपन के कारण रक्षक ने ही भक्षक का रूप ले लिया है। मौसमी नदियों और जलस्रोतों के किनारे अनियोजित निर्माण और अत्यधिक खनन के चलते बहुत संकरे हो जाते हैं जिसके कारण वे ज़्यादा पानी सम्भाल नहीं पाते। परिणामस्वरूप बारिश के समय ये किनारों को तोड़कर बस्तियों को निगल जाते हैं। बाढ़ के दौरान कृषि भूमि पर जलभराव का एक बड़ा कारण पेड़ों और वनस्पतियों को नष्ट करके खेती पर अत्यधिक दबाव डालने के चलते मिट्टी की ऊपरी परत का सख़्त होना भी होता है जिसे मिट्टी का 'कम्पेक्शन' कहते हैं। इसके लिए भी पूँजीवादी मुनाफ़ा आधारित खेती ही ज़िम्मेदार है।

कैसी विडम्बना है कि देश के कुछ इलाक़ों के लोग तो सूखे से मरते हैं और कुछ इलाक़ों के लोग बाढ़ से तबाह हो रहे हैं। कौन सा ऐसा मौसम नहीं होता जो जनता पर कहर बनकर नहीं टूटता। बारिश के मौसम में बाढ़, गर्मी में लू और ठण्ड में शीत लहर के कारण लोग काल का ग्रास बनते हैं। विज्ञान-तकनीक और उत्पादन के विकास का फ़िलहाल जो स्तर है उसके चलते यह बिलकुल सम्भव है कि लोग हरेक मौसम का सुरक्षा के साथ आनन्द ले सकते हैं। लेकिन मुनाफ़ा-केन्द्रित व्यवस्था ने मौसम का आनन्द भी पैसे वालों के लिए ही सीमित कर दिया है। मुट्ठीभर आबादी तो अपने फार्म हाउसों और साधन सम्पन्न घरों के लॉन और बालकनियों में बैठकर बारिश के मज़े लेती है लेकिन देश के करोड़ों मेहनतकश आम लोग बारिश में दुश्वारियाँ झेलने को मजबूर होते हैं। बारिश का पानी सीवरेज के गन्दे पानी के साथ मिलकर लोगों की रसोइयों तक पहुँच जाता है, पीने का पानी दूषित हो जाता है, कमर तक के बदबूदार पानी से होकर लोग काम पर जाते हैं, बच्चों की पढ़ाई छूट जाती है, बीमारियाँ फैलती हैं और आम जनता का जीवन पूरी तरह से अस्त-व्यस्त हो जाता है। एक ओर तो देश अन्तरिक्ष में चन्द्रयान भेज रहा है लेकिन दूसरी ओर ठीक इसी समय देश के करोड़ों लोग भोजन-पानी-आवास जैसे जीवन जीने के बुनियादी साधनों तक से वंचित हैं। क्या यह जनता के जीवन के अधिकार पर हमला नहीं है?

हमें यह बात समझनी होगी कि मौजूदा मानसून के दौरान पैदा हुई विभीषिका कुदरत का कोई कहर नहीं है बल्कि इसके लिए केन्द्र और राज्य सरकारों की घोर लापरवाही और इनकी पूँजीपरस्त जनविरोधी नीतियाँ सीधे तौर पर ज़िम्मेदार हैं। पहली बात, पर्यावरण संरक्षण, नदी-नालों-बाँधों-बैराजों का सामंजस्य व उचित प्रबन्धन, बेहतर जल निकासी व्यवस्था आदि काम सरकारों के हैं। सरकारें यदि इन्हें करने में नाकाम रहती हैं तो हमें यह काम करवाने के लिए एकजुट होकर इन्हें घेरना चाहिए। वे देश जहाँ की जनता अपेक्षाकृत जागरूक है और पस्ती और निराशा के बजाय जो संघर्ष का रास्ता चुनती है वहाँ पर लोग सरकारों के घुटने टिकवाकर अपनी कुछ माँगे मनवाने में कामयाब भी हो जाते हैं। हम भी यदि जागरूक और संगठित होंगे तो कम से कम उन चीज़ों को तो हासिल कर ही सकते हैं जिन्हें इस पूँजीवादी व्यवस्था के रहते हुए भी हासिल किया जा सकता है।

निश्चय ही जनता को अपनी समस्याओं से पूरी तरह से मुक्ति तो मौजूदा मुनाफ़ा-केन्द्रित व्यवस्था के ध्वंस और एक मानव-केन्द्रित व्यवस्था के निर्माण के साथ ही मिल सकती है। विज्ञान की प्रगति आज जिस स्तर पर है (हालाँकि पूँजीवादी मुनाफ़ा-केन्द्रित व्यवस्था हमेशा इस प्रगति को बाधित करती रहती है) वहाँ इन समस्याओं का सहज तरीके से समाधान किया जा सकता है, बशर्ते कि व्यवस्था के केन्द्र में मुनाफ़ा न हो और विज्ञान का प्रयोग बस अधिक से अधिक मुनाफ़ा कमाने के उपकरण के रूप में न किया जाय। हमारा शोषण करके और हमारे टैक्स के पैसे पर गुलछर्रे उड़ाने वाले धनपशुओं-नेताओं और नौकरशाहों से हमें ज़रूर ही एक-एक पाई का हिसाब लेना चाहिए। सरकारों की जनविरोधी नीतियों के खिलाफ़ संगठित होकर आवाज़ उठाना हमारे ज़िन्दा होने का सबूत है। दूसरी बात, हमें अपने रोज़-रोज़ के संघर्षों को संगठित करते हुए भी पूँजीवादी व्यवस्था की सीमाओं को भी समझना चाहिए। इन्सानी श्रम के शोषण और कुदरत की लूट पर टिकी मौजूदा मानवद्रोही पूँजीवादी व्यवस्था हमें अराजक व अनियोजित विकास यानी आम जनता के लिए विनाश, गैर-बराबरी, शोषण और बरबादी के अलावा और कुछ नहीं दे सकती है। इसलिए इसके विकल्प के बारे में भी हमें शिद्दत से विचार करना होगा। चन्द धन्नासेठों के मुनाफ़े की अन्धी हवस पूरी मानवता को मौत के मुँह में धकेल रही है। जब तक हम नहीं जागते मौत का यह ताण्डव तब तक जारी रहेगा। एक मानवकेन्द्रित, शोषणरहित और समानतामूलक व्यवस्था ही हमारी मौजूदा समस्याओं का समाधान कर सकती है।

उमर ख़ालिद आदि की दिल्ली हाई कोर्ट से ज़मानत रद्द किया जाना

न्यायपालिका के फ़ासीवादीकरण का जीता-जागता उदाहरण

● प्रसेन

"क़ानून की पवित्रता तभी तक रखी जा सकती है जब तक वह जनता के दिल यानी भावनाओं को प्रकट करता है। जब यह शोषणकारी समूह के हाथों में एक पुरज़ा बन जाता है तब अपनी पवित्रता और महत्व खो बैठता है।"

– भगतसिंह और उनके साथियों द्वारा कमिशनर, विशेष ट्रिब्यूनल, लाहौर को लिखे पत्र से

किसी भी पूँजीवादी व्यवस्था में 'क़ानून सबके लिए बराबर है' या न्यायपालिका की निष्पक्षता का चाहे जितना ढिंढोरा पीटा जाये, लेकिन न्याय के तराज़ू का पलड़ा हमेशा शासक-शोषक वर्ग के पक्ष में झुका रहता है। लेकिन अगर सत्ता पर फ़ासीवादी हुक़ूमत क़ाबिज़ हो तो न्यायपालिका का असली चेहरा साफ़-साफ़ दिखने लगता है। फ़रवरी 2020 में दिल्ली दंगों में साज़िश के मामले के तहत पिछले पाँच सालों से जेल में बन्द उमर ख़ालिद, शरजील इमाम, ख़ालिद सैफ़ी, गुलफिशा फ़ातिमा व अन्य आरोपियों के मामले में क़ानूनी प्रक्रिया भारत के न्यायपालिका के फ़ासीवादीकरण को चीख-चीख कर बयाँ कर रही है।

ग़ौरतलब है कि फ़रवरी 2020 में उत्तर-पूर्वी दिल्ली में हुए दंगों (जोकि वास्तव में हर दंगे की ही तरह स्वतःस्फूर्त नहीं थे बल्कि मुसलमानों पर पूर्वनियोजित और राज्य द्वारा प्रायोजित फ़ासीवादी हमले थे) में पुलिस ने कुल 758 मामले दर्ज किये थे। इनमें से एफ़.आई.आर नम्बर 59 (साल 2020) को सबसे अहम माना जाता है। इसमें भारतीय दण्ड संहिता (आईपीसी), 1860 और ग़ैर क़ानूनी गतिविधि (रोकथाम) अधिनियम (यूएपीए), 1967 की विभिन्न धाराओं के तहत आरोप लगाये गये हैं। इसके तहत ही शरजील इमाम, उमर ख़ालिद, ख़ालिद सैफ़ी सहित 18 लोगों पर 2020 के दंगों की "बड़ी साज़िश" रचने का आरोप है और उन्हें पिछले पाँच वर्षों से न्यायिक हिरासत में रखा गया है। अभी तक इस मामले में मुक़दमा भी शुरू नहीं हुआ है।

निचली अदालतों से ज़मानत की अर्ज़ी ख़ारिज होने के बाद उमर ख़ालिद व अन्य आरोपियों ने दिल्ली उच्च न्यायालय में ज़मानत की अर्ज़ी दाखिल की। लेकिन 2 सितम्बर को दिल्ली उच्च न्यायालय ने दिल्ली दंगों की साज़िश के मामले में उमर ख़ालिद, शरजील इमाम, ख़ालिद सैफ़ी, गुलफिशा फ़ातिमा व अन्य आरोपियों की ज़मानत याचिका ख़ारिज कर दी। अन्य आरोपी जिनकी याचिका ख़ारिज हुई है, उनमें अतर ख़ान, मोहम्मद सलीम ख़ान, शिफ़ा उर रहमान, मीरान हैदर और शादाब अहमद शामिल हैं। अदालत ने अभियोजन पक्ष की इस दलील को स्वीकार कर लिया कि दंगे एक "पूर्वनियोजित, सुनियोजित साज़िश" का परिणाम थे, न कि एक सहज घटना। उनके कथित भड़काऊ भाषणों को ग़ैरक़ानूनी गतिविधि (रोकथाम) अधिनियम, 1967 की धारा 16 के तहत साज़िश के सबूत के रूप में उद्धृत किया गया। न्यायालय ने उमर ख़ालिद की इस दलील को ख़ारिज कर दिया कि लम्बे समय तक कारावास के कारण ज़मानत उचित है। न्यायमूर्ति कौर द्वारा दिये गये फ़ैसले में 3000 पन्नों के आरोपपत्र और 30,000 पन्नों के इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य का हवाला दिया गया। न्यायमूर्ति द्वारा कहा गया कि मुक़दमा "स्वाभाविक गति से आगे बढ़ रहा है" और "जल्दबाज़ी में की गयी सुनवाई" दोनों पक्षों को नुक़सान पहुँचायेगी।

इसके बाद उमर ख़ालिद समेत अन्य लोगों ने 2 सितम्बर के दिल्ली उच्च न्यायालय के उस आदेश को सुप्रीम कोर्ट में चुनौती दी, जिसमें ख़ालिद और इमाम समेत नौ लोगों को ज़मानत देने से इनकार कर दिया गया था। लेकिन सुप्रीम कोर्ट ने 12 सितम्बर को ज़मानत याचिकाओं पर सुनवाई 19 सितम्बर तक के लिए स्थगित कर दी। 'न्यू इण्डियन एक्सप्रेस' की रिपोर्ट के मुताबिक़, जस्टिस अरविन्द कुमार और जस्टिस एनवी अंजारिया की पीठ ने कहा कि उन्हें फाइलें बहुत देर से मिलीं और वे उन्हें देख नहीं पाये।

उमर ख़ालिद, शरजील इमाम और ख़ालिद सैफ़ी के वकीलों ने हाई कोर्ट में सुनवाई के दौरान दलीलें दीं कि केवल वॉट्सऐप ग्रुप्स में होना, लेकिन कोई सन्देश न भेजना, किसी अपराध के दायरे में नहीं आता। दूसरे, दिल्ली पुलिस जिस बैठक को "साज़िश" रचने के लिये गुप्त बैठक के रूप में पेश कर रही है, वह बिल्कुल भी गुप्त नहीं थी। ख़ालिद सैफ़ी के वकील ने कहा कि, "क्या सामान्य सन्देशों के आधार पर, या फिर अभियोजन पक्ष की गढ़ी कहानियों के आधार पर यूएपीए लगाया जा सकता है? क्या यह ज़मानत न देने का आधार हो सकता है, या यूएपीए के तहत मुक़दमा चलाने का?" उन्होंने यह भी दलील दी कि सैफ़ी को ज़मानत दी जानी चाहिए क्योंकि तीन सह-आरोपियों को जून 2021 में ज़मानत मिल चुकी है। शरजील इमाम के वकील ने कहा कि शरजील का बाक़ी सभी सह-आरोपियों से कोई सम्पर्क नहीं था और न ही वह किसी साज़िश या गुप्त बैठकों का हिस्सा थे। क्योंकि शरजील इमाम, जनवरी 2020 से - दंगों से कम से कम एक महीने पहले से – बिहार में दिये गये भाषण के एक अन्य मामले में जेल में थे।

सॉलिसिटर जनरल तुषार मेहता, जो दिल्ली पुलिस की ओर से पेश हुए थे, उन्होंने ज़मानत याचिकाओं का विरोध करते हुए कहा, "अगर आप देश के ख़िलाफ़ कुछ कर रहे हैं तो फिर बेहतर है कि आप जेल में रहें, जब तक कि या तो बरी न हो जायें या सज़ा न पा लें। उन्होंने यह भी कहा कि आरोपियों का मक़सद था कि एक ख़ास दिन दंगे-आगज़नी कराकर देश को अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर बदनाम किया जाये। स्पेशल सेल का दावा है कि आरोपियों का इरादा था कि 'जब पर्याप्त संख्या में लोग जुट जायें, तो प्रदर्शन को चक्का जाम में बदला जाये' और यह सब उस समय की योजना का हिस्सा था जब तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प 2020 में दिल्ली आये थे। सभी आरोपी छात्र या एक्टिविस्ट हैं, जो सीएए विरोधी प्रदर्शनों को संगठित करने में सबसे आगे थे। दिल्ली पुलिस के अनुसार, इन विरोध प्रदर्शनों को संगठित करना दिल्ली में साम्प्रदायिक दंगे भड़काने की एक "बड़ी साज़िश" थी।

लेकिन 'देश के ख़िलाफ़ साज़िश रचने या हिंसा भड़काने' का प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है? यह ज़मानत रद्द करने के फ़ैसले से कहीं नहीं पता चलता। इसमें कहा गया है कि कई मौक़ों पर उमर ख़ालिद ने भड़काऊ भाषण दिये। लेकिन ख़ालिद का "भड़काऊ भाषण" वास्तव में क्या था? यह भी फैसले में स्पष्ट नहीं है। सार्वजनिक रिपोर्टों के अनुसार, उमर ख़ालिद के भाषणों में सीएए के ख़िलाफ़ अहिंसक विरोध के गाँधीवादी तरीक़े की अपील की गयी थी। ग़ौरतलब है कि इसके पहले हाईकोर्ट ने ख़ालिद द्वारा "इंक़लाबी सलाम" और "क्रान्तिकारी इस्तकबाल" जैसे अभिवादनों को खूनी हिंसा के आह्वान के रूप में व्याख्यायित किया था, जो कि हास्यास्पद है और न्यायपालिका के वैचारिक रुझान को भी स्पष्ट करता है।

उमर ख़ालिद आदि की ज़मानत रद्द करने के फ़ैसले का यह पैराग्राफ़ काफ़ी कुछ कहता है, "इस स्तर पर, रिकॉर्ड में मौजूद साक्ष्यों और कथित साज़िश में घटित घटनाओं को देखते हुए, प्रथम दृष्टया ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलकर्ता (उमर ख़ालिद और शरजील इमाम) दिसम्बर 2019 की शुरुआत में नागरिकता संशोधन विधेयक पारित होने के बाद सबसे पहले कार्रवाई करने वाले व्यक्ति थे, जिन्होंने व्हाट्सएप ग्रुप बनाकर और मुस्लिम आबादी वाले इलाक़ों में पर्चे बाँटकर विरोध-प्रदर्शन और चक्का-जाम का आह्वान किया, जिसमें आवश्यक आपूर्ति बाधित करना भी शामिल था। अभियोजन पक्ष आगे आरोप लगाता है कि अपीलकर्ता लगातार जनता को गुमराह करके यह विश्वास दिला रहे थे कि सीएए/एनआरसी एक मुस्लिम-विरोधी क़ानून है।"

इस पैराग्राफ से ऐसा लगता है जैसे न्यायपालिका के मुँह से सरकार बोल रही है जिसके तहत सीएए जैसे जनविरोधी क़ानून की मुखालफ़त को आपराधिक बना दिया गया और विरोध प्रदर्शनों को देश को बदनाम करने की एक "बड़ी साज़िश" के रूप में पेश किया गया। अगर इसमें देश की जगह सरकार कर दिया जाय तो बात सच्चाई के बहुत क़रीब होगी। असल में न्यायपालिका यह कह रही है कि सरकार के ख़िलाफ़ बोलना, प्रदर्शन की योजना बनाना या प्रदर्शन करना अपराध है और ऐसा अपराध जिस पर यूएपीए बनता है।

हाईकोर्ट ने यह भी माना कि सीएए/एनआरसी को मुस्लिम-विरोधी क़ानून बताना "मुस्लिम समुदाय के सदस्यों को बड़े पैमाने पर लामबन्द करने के लिए साम्प्रदायिक आधार पर भड़काऊ भाषण" देने के समान है। इस दृष्टिकोण से तो अनगिनत अन्य एक्टिविस्ट, वकील और लेखक, जिन्होंने सीएए/एनआरसी के ख़िलाफ़ बोला, लिखा, अभियान चलाया और विरोध प्रदर्शन किया, वे 'ग़ैरक़ानूनी गतिविधि (रोकथाम) अधिनियम' के तहत आतंकवादी बन जायेंगे।

धरना-प्रदर्शन और चक्का-जाम जैसे सामूहिक विरोध प्रदर्शनों की योजना को यूएपीए की धारा 15/16 के तहत "आतंकवादी कृत्य" का अपराध कैसे माना जा सकता है? इस सन्दर्भ में यह ग़ौरतलब है कि दिल्ली हाईकोर्ट ने 2021 में इस मामले में तीन सह-आरोपियों को ज़मानत देते हुए कहा था, "भले ही हम तर्क के लिए, उस पर कोई विचार व्यक्त किए बिना, यह मान लें कि वर्तमान मामले में भड़काऊ भाषण, चक्काजाम, महिला प्रदर्शनकारियों को उकसाना और अन्य कार्रवाइयों, जिनमें अपीलकर्ता कथित रूप से पक्षकार था, ने हमारी संवैधानिक गारण्टी के तहत स्वीकार्य शान्तिपूर्ण विरोध प्रदर्शन की सीमा को पार कर लिया, फिर भी अभी तक यह यूएपीए के तहत समझे जाने वाले

(पेज 6 पर जारी)

अमेरिकी टैरिफ़ बढ़ने के बाद कपड़ा उद्योग में बढ़ रही मज़दूरों की छँटनी

● भारत

बीते 27 अगस्त से अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रम्प द्वारा भारत पर लगाया गया 50 प्रतिशत टैरिफ़ लागू हो गया। टैरिफ़ बढ़ने का सबसे अधिक असर कपड़ा उद्योग और उसमें काम कर रहे मज़दूरों पर पड़ रहा है। टैरिफ़ का कपड़ा उद्योग और उसमें काम करने वाले मज़दूरों की स्थिति क्या असर हुआ है, यह जानने से पहले बात करते हैं कि टैरिफ़ क्या है और टैरिफ़ बढ़ाने से अमेरिका को क्या फ़ायदा होगा!

टैरिफ़ एक तरह का 'आयात शुल्क' है जो कोई देश दूसरे देशों से आने वाले मालों पर लगाता है। टैरिफ़ के ज़रिये आयातित सामान को महँगा करके स्थानीय उद्योगों को प्रतिस्पर्धी लाभ दिलाया जा सकता है। यहाँ तक कि टैरिफ़ से आयात कम करके और निर्यात को बढ़ावा देकर अमेरिका का व्यापार घाटा कम किया जा सकता है, हालाँकि वास्तव में ऐसा होने वाला नहीं है, जिसकी वजहों पर हम आगे आयेंगे। ट्रम्प की इस नीति को अमेरिका के उन राज्यों में मजबूत समर्थन मिल रहा है, जहाँ विनिर्माण और औद्योगिक इकाइयाँ हैं या थीं और बाद में ह्रास का शिकार हो गयीं क्योंकि वे सस्ते आयातों से मुक़ाबला नहीं कर पा रहीं थीं। टैरिफ़ बढ़ने के असर को एक उदाहरण से समझिये। मान लीजिये कि भारत से कोई कपड़ा अमेरिका जाता है, जिसकी क़ीमत 100 रुपये है। अमेरिकी सरकार द्वारा 50 प्रतिशत टैरिफ़ लगाने के बाद उसकी क़ीमत 150 रुपये हो जायेगी। ऐसे में इसकी पहली सम्भावना ये है कि इससे भारत के कपड़ों की अमेरिका में बिक्री बहुत घट जाये, क्योंकि अमेरिकी ग्राहकों को अब लगभग उसी क़ीमत पर अमेरिकी पूँजीपतियों से माल ख़रीदना पड़ सकता है। सम्भव है कि निर्यात के लिए तैयार माल डम्प पड़ जाये, कपड़े की फैक्ट्री को उत्पादन कम करना पड़े, जिससे मज़दूरों की छँटनी हो। इससे कपड़ों के उत्पादन से जुड़े विभिन्न प्रकार के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रोज़गार प्रभावित हो।

दूसरी सम्भावना यह है कि भारत की कम्पनी अमेरिका को छोड़कर किसी दूसरे बाज़ार की तलाश करे जहाँ उसे ऊँची टैरिफ़ दीवारों का सामना न करना पड़े। यानी, वह दूसरे देशों में अपने नये ख़रीदार तलाशे। लेकिन इस दूसरे पहलू की भी कई जटिलताएँ हैं। ये समय लेने वाला और एक लम्बी प्रक्रिया का हिस्सा है। इसलिए तात्कालिक तौर पर भारत सरकार के पास कोई सीधा समाधान नहीं है। अगर वह ट्रम्प की बात मानकर अपने देश में अमेरिकी मालों पर लगने वाले टैरिफ़ को कम कर देती है, तो इससे यहाँ के विशेष तौर पर छोटे और मँझोले पूँजीपति तबाह हो जायेंगे क्योंकि वे विदेशी आयात से प्रतिस्पर्द्धा नहीं कर पायेंगे। अगर वह ट्रम्प की बात को नहीं मानती है और ट्रम्प के 50 प्रतिशत टैरिफ़ की परवाह नहीं करती तो फिर उसका निर्यात उद्योग संकट में आ जाता है। ऐसे में, भारत सरकार ट्रम्प से कोई बीच का समझौता करने, रूस, चीन, ब्राज़ील आदि से क़रीबी बढ़ाने, डॉलर पर विदेशी व्यापार में निर्भरता कम करने जैसे तमाम रास्तों पर एक साथ काम कर रही है, जिससे ट्रम्प पर दबाव भी पड़े (क्योंकि अमेरिकी अर्थव्यवस्था काफ़ी हद तक विश्व मुद्रा के रूप में प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं द्वारा डॉलर में व्यापार किये जाने पर निर्भर करती है)।

सैद्धान्तिक तौर पर कहें तो टैरिफ़ बढ़ाना अमेरिका के लिए दो तरीके से फ़ायदेमन्द हो सकता है। पहला, उसके राजस्व में बढ़ोत्तरी हो सकती है अगर वहाँ निर्यात करने वाले देशों के लिए यह निर्यात टैरिफ़ बढ़ाये जाने के बावजूद फ़ायदेमन्द रहता है। यानी उस सूरत में अमेरिका का विदेशी मुद्रा भण्डार बढ़ेगा। दूसरा, उसके अपने देश के उद्योग को संरक्षण प्राप्त होगा। कम-से-कम सैद्धान्तिक तौर पर इससे अमेरिका के उद्योग भारत से आयातित सामानों की तुलना में अपनी क़ीमत को बाज़ार में प्रतिस्पर्धी बनाये रख सकते हैं। सभी देश किसी न किसी रूप में टैरिफ़ की व्यवस्था को लागू करते हैं। लेकिन ये टैरिफ़ वॉर (युद्ध) के रूप में तब बदल जाता है, जब कोई देश किसी देश पर मनमाने टैरिफ़ लगाना शुरू करता है और दूसरा देश भी जवाबी कार्यवाही में टैरिफ़ बढ़ाना शुरू कर देता है। जब तक बाज़ार एक बँधे-बँधाये नियम के तहत चलता रहता है, तब तक कोई गड़बड़ी नही दिखायी देती है, लेकिन इस तरह के मनमाने टैरिफ़ से सारा उत्पादन-वितरण, आयात-निर्यात गड़बड़ाने लगता है और मँहगाई, उत्पादन का संकट और रोज़गार का संकट पैदा होने लगता है।

लेकिन इस बात की उम्मीद कम है कि इससे अमेरिकी उद्योगों का बढ़े पैमाने पर कोई पुनरुत्थान होगा। वजह यह है कि वे लागत-प्रभावी नहीं हैं। वहाँ उत्पादन की लागत चीन, भारत, आदि जैसे देशों से ज़्यादा है और इसकी तमाम वजहों में प्रमुख वजह वहाँ श्रमशक्ति की कीमत का ज़्यादा होना है। अमेरिकी मज़दूरों को जिस मज़दूरी पर काम करने के लिए तैयार किया जा सकता है, उस पर मुनाफ़े की औसत दर को ऊँचा बनाये रख पाना सम्भव नहीं है और अमेरिकी पूँजीपति श्रमशक्ति की कीमत ज़्यादा होने के आधार पर मालों की कीमत को विश्व बाज़ार में नहीं बढ़ा सकते हैं क्योंकि हम सभी जानते हैं कि कीमतें मज़दूरी ज़्यादा होने के कारण नहीं बढ़ती हैं; उससे मुनाफ़े की दर कम होती है। और भारत, चीन, ब्राज़ील आदि जैसे देशों जितनी कम कीमत पर मज़दूरों को निचोड़ना अमेरिका में पूँजीपतियों के लिए सम्भव नहीं है, विशेष तौर पर श्वेत मज़दूरों के सन्दर्भ में। ऐसे में, टैरिफ़ बढ़ाने से भी अमेरिका में उद्योगों का किस हद तक उभार होगा, यह भविष्य में ही पता चलेगा। फिलहाल, इतना तय है कि अमेरिकी जनता के लिए महँगाई में भारी वृद्धि होगी और यह होनी शुरू हो चुकी है। इससे अमेरिकी पूँजीवाद के आन्तरिक अन्तरविरोध भी और तीखे होंगे।

लेकिन तात्कालिक तौर पर इसका भारत, चीन, ब्राज़ील आदि जैसे देशों के कई उद्योगों पर निश्चित ही प्रभाव पड़ेगा और पड़ रहा है।

आइए, अब बात करते हैं कि टैरिफ़ का भारत के कपड़ा उद्योग पर क्या असर पड़ रहा है। इन नये टैरिफ़ों ने भारत के उन क्षेत्रों को बुरी तरह प्रभावित किया है, जो अमेरिका को किये जाने वाले निर्यात पर बहुत अधिक निर्भर हैं, जिसके परिणामस्वरूप हज़ारों मज़दूरों की नौकरियाँ ख़त्म होने की आशंका है। देश के सबसे बड़े निर्यात क्षेत्रों में से एक, कपड़ा और परिधान उद्योग विशेष रूप से टैरिफ़ बढ़ने से प्रभावित हुए हैं। बता दें कि कपड़ा उद्योग भारत के सबसे बड़े, संगठित एवं व्यापक उद्योगो में से एक है। भारत दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा कपड़ा उत्पादक देश है, जिसके पास 3400 से अधिक कपड़ा मिलें हैं। यह देश के औद्योगिक उत्पादन का 14 प्रतिशत, सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 2.3 प्रतिशत, कुल विनिर्मित औद्योगिक उत्पादन का 13 प्रतिशत व कुल निर्यात के 12 प्रतिशत की आपूर्ति करता है। साथ ही वैश्विक वस्त्र एवं परिधान व्यापार में भारत के कपड़ा उद्योग की 4 प्रतिशत हिस्सेदारी है। आँकड़ों के मुताबिक कपड़ा उद्योग में क़रीब 4.5 करोड़ मज़दूर कार्यरत हैं।

भारत के कपड़ा उद्योग के लिए अमेरिका सबसे बड़े बाज़ारों में से एक है। यू.एस इन्टरनेशनल ट्रेड कमिशन के अनुसार 2024 में भारत से क़रीब 20,740 करोड़ के वस्त्र अमेरिका निर्यात किये गये। वहीं अमेरिका के कुल कपड़ों के आयात में 33 प्रतिशत हिस्सा भारत से आता होता है। व्यापार थिंक-टैंक *ग्लोबल ट्रेड रिसर्च इनिशिएटिव* का अनुमान है कि 2025-26 में अमेरिका को भारत का निर्यात लगभग 43 प्रतिशत घटकर 87 अरब डॉलर से 49.6 अरब डॉलर हो सकता है। 50 प्रतिशत टैरिफ़ बढ़ने के बाद, एक भारतीय निर्मित शर्ट की क़ीमत अमेरिकी ख़रीदारों को 16.40 डॉलर में मिलेगी, जो पहले 10 डॉलर में बिकती थी। यह क़ीमत चीन की 14.20 डॉलर, बांग्लादेश की 13.20 डॉलर या वियतनाम की 12 डॉलर की क़ीमत से कहीं अधिक महँगी है। भारतीय निर्यातकों के संगठन *फियो* यानी *फेडरेशन ऑफ इण्डियन एक्सपोर्ट ऑर्गेनाइजेशन* के अध्यक्ष एस.सी. रल्हान की अगर मानें तो सूरत, तिरुपुर से लेकर नोएडा तक कई ऐपेरल और टेक्सटाइल निर्माताओं ने प्रोडक्शन लागत बढ़ने की वजह से उत्पादन रोक दिया है। इसका असर नौकरियों से मज़दूरों की छँटनी के रूप में सामने आ रहा है। जब तक टैरिफ़ युद्ध की समस्या का कोई समाधान नहीं निकलता या भारत को पर्याप्त वैकल्पिक बाज़ार नहीं मिलते तब तक यह समस्या जारी रहेगी।

नोएडा की बात करें तो यहाँ क़रीब साढ़े चार हजार (छोटी-बड़ी) कपड़े की फैक्ट्रियाँ हैं। इनमें क़रीब दस लाख मज़दूर काम करते हैं। ज्ञात हो कि इन कम्पनियों में किसी भी तरह का श्रम क़ानून लागू नहीं होता। इन कम्पनियों में 12 घण्टे की शिफ़्ट चलती है। अधिकांश मज़दूर बेहतर कमाई की आस में अपनी सुरक्षा और स्वास्थ्य की परवाह किये बग़ैर ज़्यादा से ज़्यादा काम करना चाहते हैं। इतनी कम तनख़्वाह पर ओवरटाइम करना तो इस उद्योग में आम बात है। ओवरटाइम का भुगतान भी सिंगल रेट से होता है। हर रोज़ (रविवार को भी) 3 से 4 घण्टे ओवरटाइम करने के बाद मज़दूर महीने में 15-18 हज़ार रुपये ही कमा पाते हैं। कुछ मज़दूरों के अनुसार वे हर हफ़्ते लगभग 50-60 घण्टे ओवरटाइम करते हैं। उत्पादन के चरम समय पर रात को 2 बजे तक काम करना पड़ता है। ई.एस.आई-पी.एफ जैसे क़ानून किसी फैक्ट्री में लागू नहीं होते हों। साथ ही पीस रेट पर काम करने वाले मज़दूर भी इस उद्योग में काफ़ी संख्या में हैं। कपड़े के हर मीटर पर मिलने वाली मज़दूरी में भी गिरावट आयी है। वर्तमान में यह संख्या 1.8 से 3 रुपये प्रति मीटर के बीच है। इसके अलावा इस उद्योग में आये-दिन हादसे होते हैं। उंगली कटना, मशीन में फँसना या कुचले जाना, बीम उठाकर सीढ़ियाँ चढ़ते वक़्त फिसलकर गिरना, उड़ती शटल से चोट खाना, करण्ट लगना या आग से झुलसना- मज़दूरों की जान को ख़तरा लगातार बना रहता है। मालिकों द्वारा मज़दूरों को किसी भी प्रकार के सुरक्षा उपकरण मुहैया नहीं कराये जाते हैं। यह टैरिफ़ लगने से पहले कपड़ा उद्योग में मज़दूरों की "सामान्य" स्थिति है।

टैरिफ़ लगने के बाद कपड़ा उद्योग के मज़दूरों की स्थिति और अधिक बदहाल हो गयी है। एक तरफ़ तो अधिकतर कम्पनियों में से आधे मज़दूरों को बिना नोटिस दिये काम से निकाला जा रहा है। वहीं दूसरी तरफ़ बहुत से मज़दूरों को बिना वेतन काम से कई दिनों की छुट्टी दी जा रही है। जिन्हें काम से निकाला नहीं गया, उनकी 8 घण्टे की शिफ़्ट चल रही है, जिस कारण उन्हे 8-9 हज़ार वेतन ही मिल रहा है, जो कि आज के महँगाई के दौर में नाकाफ़ी है। सालों तक कपड़ा लाइन में काम कर चुके मज़दूरों को अब किसी और फैक्ट्री में भी काम नहीं मिल रहा है। अलग-अलग राज्यों से काम करने आये मज़दूरों को तमाम समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। नौकरी जाने या बिना वेतन के छुट्टी मिलने के कारण मज़दूरों को मकान का किराये देने से लेकर राशन लेने व घर का ख़र्च चलाने के लिए बेहद मशक्क़त करना पड़ रहा है। ऐसे में यह साफ़ हो जाता है कि टैरिफ़ बढ़ने से सबसे अधिक गाज मज़दूरों पर ही गिरी है।

यह संकट के दौर में विश्व पूँजीवादी व्यवस्था के बढ़ते आन्तरिक अन्तरविरोधों और अमेरिकी साम्राज्यवाद के जारी पतन का ही नतीजा है। अमेरिकी पूँजीपति वर्ग अपने वर्चस्व के पतन को रोकना चाहते हैं। ट्रम्प के पक्ष में अमेरिकी पूँजीपति वर्ग के एक विचारणीय पक्ष के जाने का एक बड़ा कारण विश्व बाज़ार में रूस-चीन धुरी द्वारा आंग्ल-अमेरिकी धुरी को मिल रही प्रतिस्पर्द्धा है। ट्रम्प टैरिफ़ इसी संकट की एक अभिव्यक्ति हैं। लेकिन इसके कारण अमेरिकी साम्राज्यवादी धुरी के यूरोप व जापान से रिश्तों पर भी संकट मँडरा रहा है। अगर आंग्ल-अमेरिकी धुरी और यूरोप व जापान में सम्बन्ध बिगड़ते हैं, जो कि राजनीतिक व सैन्य निर्भरता के कारण अमेरिका के पीछे चलने के लिए अब तक मजबूर रहे हैं, तो इससे विश्व राजनीति के समीकरणों में बड़े परिवर्तन आयेंगे।

ग़ौरतलब बात यह है कि भारतीय पूँजीपति वर्ग ट्रम्प के दबाव के आगे घुटने नहीं टेक रहा है, बीच का रास्ता निकालने की कोशिश करने के साथ-साथ रूस-चीन धुरी से अपने रिश्तों को प्रगाढ़ बनाने का काम भी कर रहा है। यह भारतीय पूँजीपति वर्ग की पुरानी रणनीति रही है। अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता को बरक़रार रखने के लिए वह हमेशा से ही अपने विकल्पों का विस्तार करता है। आज भी वह वही कर रहा है। लेकिन जब तक विश्व राजनीति के समीकरण पूँजीवाद और बुर्जुआ वर्ग के पक्ष में ढंग से व्यवस्थित नहीं हो जाते, तब तक इन टैरिफ़ों का चीन, भारत, ब्राज़ील आदि जैसे देशों के निश्चित उद्योगों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा ही पड़ेगा और हमेशा की तरह इन उद्योगों का पूँजीपति वर्ग इस संकट का बोझ इन उद्योगों के मज़दूर वर्ग पर डालेगा, उसकी मज़दूरी घटायेगा, कार्यदिवस की लम्बाई बढ़ायेगा, छँटनी करेगा ताकि लागत को इतना कम कर सके कि उसकी पूँजी विश्व बाज़ार में प्रतिस्पर्द्धा करने के योग्य हो सके। इस समय यही प्रक्रिया जारी है और मज़दूरों को इसे समझना चाहिए ताकि इसके विरुद्ध वह प्रभावी तरीक़े से एकजुट और संगठित हो सकें।

दिल्ली के शाहाबाद डेरी इलाक़े में छठ घाट पर डूबने से युवक की मौत

RWPI द्वारा छठ घाट से पानी निकलवाने हेतु जन अभियान व प्रशासन का घेराव

● नौरीन

26 अगस्त को पाँच मन्दिर, शाहबाद डेरी (दिल्ली) के छठ घाट में एक युवक की तालाब में डूबने से मौत हो गयी। यह कोई पहली घटना नहीं है, इससे पहले भी कई लोग इस तालाब में डूबते-डूबते बचे हैं और कुछ लोगों ने अपनी जान तक गवाँ दी। ऐसी घटनाओं पर प्रशासन हमेशा उदासीन रहा है। प्रशासन की इस लापरवाही के विरोध में तथा इस घटना का संज्ञान लेते हुए भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) ने तत्काल लोगों को संगठित और गोलबन्द करना शुरू किया।

29 अगस्त को RWPI के नेतृत्व में जब इलाक़े के लोग भाजपा के स्थानीय कार्यालय पर अपना ज्ञापन तथा अपनी माँगें रखने हेतु पहुँचे तो निगम पार्षद ही अनुपस्थित थे। उनके लग्गू-भग्गुओं ने ज्ञापन लेने से यह कहते हुए इनकार कर दिया कि यह मुद्दा उनके विभाग में नहीं आता। बड़ी हास्यास्पद बात है कि इन सभी नेताओं के लिए चुनाव के समय सारे मुद्दे इनके विभाग में आ जाते हैं। आपके बच्चे इनके बच्चे बन जाते हैं और चुनाव ख़त्म होते ही हमारे बच्चों की मौत से भी इनको कोई फ़र्क नहीं पड़ता है।

बहरहाल, बदलती परिस्थितियों को संज्ञान में लेते हुए RWPI के नेतृत्व में पाँच मन्दिर के लोगों ने विधायक कार्यालय पर घेराव किया और अपना ज्ञापन सौंपा। हर बार की तरह जनता के तथाकथित प्रतिनिधि जो पूँजीपतियों की सेवा में लगे हैं, अपने कार्यालय पर मौजूद नहीं थे। ज्ञापन में छठ घाट से पानी निकलवाने की तात्कालिक माँग के साथ अन्य माँगों को भी रेखांकित किया गया।

यह घाट बारिश के मौसम में नाले और बरसात के पानी से भर जाता है। बार-बार प्रशासन को बोलने के बावजूद इसपर कोई कार्रवाई नहीं की जाती। पाँच मन्दिर, शाहबाद डेरी में झुग्गियों के पीछे खुला मैदान स्थित है। यहाँ लोग पूरे दिन फैक्टरियों, कारखानों, और कोठियों में खटकर आने के बाद इस गर्मी और उमस के मौसम में बाहर टहलते हैं। कोई खुली जगह न होने के कारण बच्चे इसी पाँच मन्दिर के मैदान में खेलते-कूदते हैं। कुछ घटनाएँ ऐसी भी सामने आई जहाँ बच्चे तालाब में डूबते-डूबते बचे हैं। इसी को ध्यान में रखते हुए इस तालाब को नियमित तौर पर खाली करवाये जाने की माँग भी ज्ञापन में रखी गयी ताकि तालाब में डूबने से लेकर बीमारियों के पनपने के ख़तरे को टाला जा सके। इसके साथ ही यह माँग भी उठायी गयी कि तालाब के इर्द-गिर्द सुरक्षा हेतु चारदीवारी बनायी जाये और ख़राब पड़ी लाइट को जल्द से जल्द ठीक कराया जाये।

अगर इन माँगों पर उचित कार्रवाई नहीं की जाती है, तो इस मसले पर जनता को एकजुट किया जायेगा और फिर से बड़े पैमाने पर जुटान कर इन तथाकथित जनप्रतिनिधियों को घेरा जायेगा। RWPI के प्रवक्ता ने बताया कि इलाके रहने वाली मेहनतकश जनता को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाने का काम RWPI निरन्तर कर रही है। पिछले कुछ वर्षों के दौरान मज़दूरों, मेहनतकशों और इलाके में रहने वाली आम जनता ने RWPI के नेतृत्व में स्थानीय मुद्दों पर तमाम संघर्ष किये हैं और उनमें से कुछ में जीत भी हासिल की है। इस मुद्दे पर भी जनता को गोलबन्द और संगठित करने का काम तब तक जारी रखा जायेगा, जब तक कि उपरोक्त माँगें पूरी नहीं हो जातीं।

न्यायपालिका के फ़ासीवादीकरण का जीता-जागता उदाहरण

(पेज 4 से आगे)

'आतंकवादी कृत्य' या 'षड्यन्त्र' या 'आतंकवादी कृत्य की तैयारी' के बराबर नहीं है।" लेकिन उमर ख़ालिद, शरजील इमाम और अन्य की ज़मानत के मामले में हाई कोर्ट के लिए अपने ही निर्णय का कोई मतलब नहीं। यही नहीं, हाईकोर्ट ने इस मामले में सुप्रीम कोर्ट के एक मामले में दिये गये फ़ैसले तक को दरकिनार कर दिया, जिसमें कहा गया था कि यूएपीए की कठोरता के बावजूद, लम्बी क़ैद संवैधानिक न्यायालय द्वारा ज़मानत देने का आधार हो सकती है। इस पर हाईकोर्ट का कहना था कि 'ट्रायल स्वाभाविक गति से आगे बढ़ रहा है' और इसमें जल्दबाज़ी की कोई आवश्यकता नहीं है।'

इस मामले में कई उतार-चढ़ाव आये। कई न्यायाधीशों ने ख़ुद को सुनवाई से अलग कर लिया। दंगों से कुछ समय पहले कई अन्य व्यक्तियों द्वारा दिये गये सीधे भड़काऊ भाषणों के सार्वजनिक रिकॉर्ड उपलब्ध हैं, जिनके ख़िलाफ़ दिल्ली पुलिस ने आज तक एफ़आईआर भी दर्ज नहीं की है। वजह स्पष्ट है उनको भाजपा का राजनीतिक संरक्षण प्राप्त है। दिल्ली हाईकोर्ट के न्यायाधीश, जिन्होंने ऐसे लोगों के ख़िलाफ़ एफ़आईआर दर्ज न करने के लिए पुलिस की खिंचाई की थी, अगली सुबह ही उनका तबादला हो गया!

वैसे तो आम तौर पर भी लेकिन विशेषकर फ़ासीवादी मोदी सरकार के सत्ता में आने के बाद से न्यायपालिकाओं के अलग-अलग हिस्सों से विवादित फ़ैसले लगातार आते रहे हैं। पिछले 11 वर्षों में सामाजिक-राजनीतिक-मानवाधिकार कार्यकर्ताओं को बिना किसी सबूत के वर्षों तक जेल में बन्द रखने का कीर्तिमान भारतीय न्यायपालिका द्वारा बनाया गया है। जी.एन.साईबाबा और फ़ादर स्टैन स्वामी के मामले में भी न्यायपालिका ने अपना बेहद क्रूर चेहरा दिखाया था। अल्ज़ाइमर से पीड़ित 85 वर्ष के स्टैन स्वामी को बीमारी में बेहद बुनियादी सुविधाओं तक से वंचित रखा गया था। साईबाबा को बॉम्बे हाईकोर्ट के दो जजों द्वारा सभी आरोपों से बरी किये जाने के बाद जस्टिस एम.आर.शाह ने रातोंरात सुनवाई करके उन्हें वापस जेल भिजवा दिया था। एक ओर सामाजिक कार्यकर्ताओं को बिना किसी सबूत के सालों-साल जेल में रखा जाता है, वहीं दूसरी ओर हत्यारों व बलात्कारियों को पैरोल पर पैरोल दी जाती है। बीते 5 अगस्त को ही डेरा सच्चा सौदा के प्रमुख गुरमीत राम रहीम को 40 दिन की पैरोल पर रिहा किया गया था। राम रहीम हत्या व बलात्कार के ज़ुर्म में उम्रक़ैद की सज़ा काट रहा है। लेकिन पिछले 8 सालों में वो सत्तरह बार जेल से बाहर आ चुका है और अब तक कुल मिलाकर 375 दिन जेल से बाहर रह चुका है।

उमर ख़ालिद, गुलफ़िशा फ़ातिमा, शरजील इमाम, आनन्द तेलतुम्बडे जैसे सामाजिक कार्यकर्ता सालों से जेल में सड़ रहे हैं, लेकिन सत्ता पक्ष यानी फ़ासीवादी भाजपा व संघ परिवार से जुड़े या संरक्षण प्राप्त दंगाइयों, बलात्कारियों-व्याभिचारियों, भ्रष्टाचारियों व हत्यारों को कोई सज़ा नहीं मिलती है। फ़र्ज़ी मुठभेड़ करवाने और करने वालों को, झूठे आरोप व साक्ष्य गढ़ने वालों को, फ़र्ज़ी मुक़दमे चलाने वालों के ख़िलाफ़ अदालतें और न्यायाधीश चूँ तक नहीं करते हैं। आडवाणी, अमित शाह, आदित्यनाथ से लेकर प्रज्ञा सिंह ठाकुर, संगीत सोम, असीमानन्द, नरसिंहानन्द, कुलदीप सिंह सेंगर "बाइज़्ज़त बरी" कर दिये जाते हैं और इनके ख़िलाफ़ दर्ज हत्याओं, दंगों, धार्मिक उन्माद फैलाने, नफ़रती भड़काऊ भाषणों के तमाम मामले रातोंरात काफ़ूर हो जाते हैं। धारा 370 हटने से लेकर तमाम सबूतों को दरकिनार करते हुए राम जन्मभूमि मुद्दे पर सुप्रीम कोर्ट के सभी जजों द्वारा एकराय से लिए गये फ़ैसले ये बताते हैं कि आज भारतीय न्यायपालिका का चरित्र किस हद तक फ़ासीवादी राज्यसत्ता के वैचारिक-राजनीतिक प्रोजेक्ट के अनुसार ढलता जा रहा है। फ़ासीवाद के मौजूदा दौर में इस देश की न्यायिक व्यवस्था भी नहीं चाहती है कि उसके चरित्र को लेकर कोई भ्रम या मुग़ालता पाला जाये!

वास्तविकता यही है कि पूँजीवादी न्याय व्यवस्था का एक स्पष्ट वर्ग चरित्र है। व्यवस्था की उत्तरजीविता बढ़ाने और पूँजीपतियों, पूँजीवादी दलों, सरकारों की नंगी लूट और तानाशाही पर पर्दा डालने के लिए बीच-बीच में न्यायपालिका कुछेक आभासी और औपचारिक तौर पर जनपक्षधर फ़ैसले देती है, जिसके कारण इसके वास्तविक चरित्र को लेकर आम लोगों में भी विभ्रम बना रहता है। लेकिन आज के दौर में तो यह बात दिन के उजाले की तरह साफ़ हो चुकी है कि न्यायपालिका न सिर्फ़ पूँजी के हितों की सेवा कर रही है, जोकि वह आम तौर पर भी करती है बल्कि फ़ासीवादी संघ परिवार, भाजपा और मोदी-शाह के इशारों पर भी काम कर रही है। क्या कारण है कि फ़ासिस्टों के ख़िलाफ़ हर क़िस्म के राजनीतिक प्रतिरोध की ताक़तों व व्यक्तियों को क़ानूनी-संवैधानिक दायरे में औपचारिक तौर पर भी कोई राहत नहीं मिल पा रही है? स्पष्ट है कि न्यायपालिका के फ़ासीवादीकरण की दीर्घकालिक लम्बी प्रक्रिया अपने मुक़ाम पर पहुँच चुकी है। फ़ासीवाद के भारतीय संस्करण के उभार के लम्बे ऊष्मायन काल में भारतीय फ़ासिस्टों ने न्यायपालिका समेत तमाम बुर्जुआ संस्थानों में तफ़सील के साथ व्यवस्थित तौर पर घुसपैठ की है, जिसके परिणाम आज सभी के सामने हैं। "महान" भारतीय पूँजीवादी लोकतन्त्र का ऐसा कोई भी निकाय आज बचा नहीं है जो फ़ासीवादीकरण की प्रक्रिया से अछूता रहा हो और यह काम भारतीय फ़ासिस्टों ने "महान" भारतीय संविधान से बिना किसी प्रत्यक्ष छेड़छाड़ के अंजाम दिया है।

वकील और पत्रकार सुशोवन पटनायक ने अपनी विस्तृत रिपोर्ट में तथ्यों सहित इस बात को साबित किया कि किस प्रकार 1992 से ही संघ परिवार ने न्यायालय में घुसपैठ की योजना को अमल में लाना शुरू किया था। 7 सितम्बर 1992 को आरएसएस के प्रचारक दत्तोपन्त ठेंगड़ी ने 'एबीएपी' (अखिल भारतीय अधिवक्ता परिषद) की स्थापना की थी। 15000 सदस्य संख्या वाले इस परिषद के सदस्य बार एसोसिएशनों का नेतृत्व करते हैं, इसके संरक्षक बेंचों पर बैठते हैं और उनके बच्चे सुप्रीम कोर्ट की कार्यवाही की अगुवाई करते हैं। सुप्रीम कोर्ट के 33 मौजूदा जजों में से कम से कम 9 ने परिषद के एक से ज़्यादा कार्यक्रमों में मुख्य अतिथि के रूप में भाग लिया है। फ़ासिस्टों ने बहुत योजनाबद्ध तरीक़े से न्यायपालिका में संस्थाबद्ध घुसपैठ, लाभ/पद/प्रलोभन, और भय (तबादला/पदावनति/ जस्टिस लोया जैसा हश्र) के ज़रिये देश की अन्य संस्थाओं की तरह न्यायपालिका पर भी अपनी मज़बूत पकड़ बना ली है।

ऐसे हालात में आज इस देश के मज़दूरों-मेहनतकशों और हर इन्साफ़पसन्द नागरिक को न्यायिक व्यवस्था, क़ानून-संविधान के जन-विरोधी चरित्र को समझना होगा। न्यायपालिका से लेकर पूरी पूँजीवादी व्यवस्था मज़दूरों-मेहनतकशों के लिए नहीं है। यह भ्रम जितनी जल्दी टूटेगा उतनी ही जल्दी सच्चे न्याय और सच्ची समानता पर आधारित व्यवस्था स्थापित और बहाल करने की लड़ाई शुरू की जा सकेगी और फ़ासीवाद के विरुद्ध भी कोई कारगर जुझारू मोर्चा खुल पायेगा। अन्यथा न्यायपालिका व पूँजीवाद से न्याय की "उम्मीद" हमें हताशा और निराशा के गड्ढे में धकेल देगी। साथ ही जेल में बन्द सभी सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ताओं की रिहाई के लिए भी पुरज़ोर आवाज़ उठानी होगी और अपने जनवादी अधिकारों को बचाने के लिए जन-आन्दोलन खड़ा करना होगा।

भगत सिंह और उनके साथियों के शब्दों में कहें तो

"हम वर्तमान ढाँचे के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने के पक्ष में हैं। हम वर्तमान समाज को पूरे तौर पर एक नये सुगठित समाज में बदलना चाहते हैं। इस तरह मनुष्य के हाथों मनुष्य का शोषण असम्भव बनाकर सभी के लिए सब क्षेत्रों में पूरी स्वतन्त्रता विश्वसनीय बनायी जाये। जब तक सारा सामाजिक ढाँचा बदला नहीं जाता और उसके स्थान पर समाजवादी समाज स्थापित नहीं होता, हम महसूस करते हैं कि सारी दुनिया एक तबाह कर देने वाले प्रलय-संकट में है। "

('अदालत एक ढकोसला है' से)

फ़िलिस्तीनी जनता के मुक्ति संघर्ष के समर्थन में और ग़ज़ा में जारी इज़राइली जनसंहार के खिलाफ़ दुनियाभर के इंसाफ़पसन्द नागरिक और मज़दूर सड़कों पर

● अंजलि

7 अक्टूबर को ज़ायनवादी इज़रायल द्वारा फ़िलिस्तीन में ज़ारी बर्बर नरसंहार के दो साल पूरे हो जायेंगे। साम्राज्यवादी पश्चिमी ताक़तों की शह पर ज़ारी इस क़त्लेआम में अब तक 66,000 से ज़्यादा लोग मारे जा चुके हैं जिसमें आधे से ज़्यादा बच्चे और महिलाएँ हैं। इज़रायली बर्बरता का अन्दाज़ा इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि ग़ज़ा के लगभग सभी बाशिन्दे विस्थापित हो गये हैं। आज ग़ज़ा का हर नागरिक गम्भीर खाद्य असुरक्षा और अकाल का सामना कर रहा है। जो लोग बमों, मिसाइलों, गोलियों से बच गये हैं वे इज़रायली नाकेबन्दी की वजह से भूख और दवा-इलाज के अभाव में मर रहे हैं। खाद्य सहायता की कतार में खड़े रहते हुए गोलीबारी में 2456 से अधिक लोग अपनी जान गँवा बैठे हैं। इज़रायली नाकेबन्दी ने ग़ज़ा को आज खुली जेल में तब्दील कर दिया है। दुनिया के तमाम देशों से भेजे जाने वाली राहत सामग्री भी ग़ज़ा के लोगों तक पहुँच नहीं पा रही है।

इसी नाकाबन्दी को तोड़ने के इरादे से 'ग्लोबल सुमुद फ़्लोटिला' भी निकला है जिसमें 44 देश की 50 से ज़्यादा नौकाएँ शामिल हैं। इन नावों पर दुनिया भर से ऐक्टिविस्ट, डॉक्टर, कलाकार और राहतकर्मी ग़ज़ा के बच्चों और नागरिकों के लिए ज़रूरी सामान ले जा रहे हैं। इस फ़्लोटिला में ग्रेटा थनबर्ग, हॉलीवुड अभिनेत्री सुज़न सरेण्डन, अभिनेता लियाम कनिंघम, नेल्सन मण्डेला के पौत्र ज्वेलीवेलीले मण्डेला सहित सैकड़ों एक्टिविस्ट शामिल हैं। राहत सामग्री ले जा रहे इंसाफ़पसन्द-न्यायप्रिय लोगों की नावों पर बर्बर इज़रायली सेना कायरतापूर्ण हमले कर रही है। इज़रायली बर्बरों द्वारा ट्यूनीशिया के सिडी बू सईद बन्दरगाह पर सुमुद फ्लोटिला के नौकाओं को ड्रोन हमले का निशाना भी बनाया गया। इस कायरतापूर्ण हमले के बावजूद नौकाओं पर सवार सभी एक्टिविस्ट पूरी बहादुरी के साथ डटे हुए हैं। अन्यायपूर्ण इज़रायली नाकेबन्दी तोड़ने के लिए चल रही मुहिम पर इज़रायल द्वारा हमले की यह कोई पहली घटना नहीं है। इसके पहले मई और जून 2025 में क्रमशः एफएफसी नाव 'कॉन्शेंस' और 'मेंडेलिन' को भी इज़रायली नौसेना ने इन्टरसेप्ट कर दिया था। जुलाई, 2025 में ग़ज़ा के लोगों तक राहत सामग्री पहुँचाने और इज़रायली नाकेबन्दी तोड़ने के मक़सद से एक बड़ा जहाज़ी अभियान फ्रीडम फ्लोटिल्ला 'हण्डाला' निकला था, जिसमें कई देशों के सामाजिक कार्यकर्ता, कलाकार आदि शामिल थे। ज्ञात हो कि इस पर इज़रायली सेना ने हमला करके कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर लिया था जिसमें ग्रेटा थनबर्ग भी शामिल थी।

हत्यारी इज़रायली सेना के हमलों से बचने के लिए ग़ज़ा के लोग उन जगहों पर शरण ले रहे हैं जहाँ कोई भी सभ्य इन्सान नहीं रह सकता। अक्टूबर 2023 से लेकर अबतक ग़ज़ा पर इज़रायली ज़ायनवादियों ने 1 लाख टन से ज़्यादा बम बरसाये हैं जो अबतक के युद्धों में इस्तेमाल किये गये विस्फोटकों से सबसे ज़्यादा है। इतना ही नहीं राहत सामग्री लेने के लिए क़तारों में लगे हज़ारों बच्चों और नागरिकों की हत्या बुज़दिल इज़रायली सेना कर चुकी है। इस बर्बर नरसंहार में इज़रायल को अमेरिका समेत तमाम साम्राज्यवादी पश्चिमी देशों व अरब देशों के शासक वर्ग का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष साथ मिला हुआ है। अपने को सभ्य कहने वाले तमाम पश्चिमी देश इस क़त्लेआम को रोकने की जगह उल्टे इज़रायल को हथियार निर्यात कर रहे हैं और उसकी मदद कर रहे हैं।

आज अगर दुनिया के ज़्यादातर देशों के शासक वर्ग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इज़रायल के साथ खड़े हैं तो

दूसरी तरफ हर देश की मेहनतकश अवाम फ़िलिस्तीन के समर्थन में खड़ी है। ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका, ब्राज़ील, जापान, मलेशिया, केन्या, सेनेगल, बांग्लादेश, भारत, और अन्य यूरोपीय देश समेत दुनिया भर से इंसाफ़पसन्द लोग हज़ारों की संख्या में फ़िलिस्तीन के समर्थन में सड़कों पर उतरकर प्रदर्शन कर रहे हैं और इसके कारण अपने यहाँ के शासकों का दमन झेल रहे हैं। दुनियाभर की अवाम अपने देश में इज़रायल पर प्रतिबन्ध लगाने और उससे हर तरह के सामरिक, व्यापारिक, कुटनीतिक सम्बन्धों को रद्द करने की माँग को लेकर अपने देशों के शासक वर्ग से संघर्ष कर रही है।

हालिया दिनों में फ़िलिस्तीन में जारी इज़रायली नरसंहार के सवाल पर यूनाइटेड नेशन में वोटिंग करायी गयी जिसमें भारत ने फ़िलिस्तीन के समर्थन में वोट किया। हालाँकि भारत का शासक वर्ग इज़रायल के साथ हर तरह के सामरिक, व्यापारिक, कुटनीतिक सम्बन्ध क़ायम किये हुए है। हालिया दिनों में भारत सरकार ने इज़रायल के साथ 3.9 अरब डॉलर का व्यापारिक समझौता किया है जो यही दिखलाता है कि फ़ासीवादी मोदी सरकार और ज़ायनवादी इज़राइल विचारधारात्मक-राजनीतिक तौर पर भी एक-दूसरे से नज़दीकी रखते हैं। हालाँकि भारत में भी धीरे-धीरे आम लोगों के बीच इज़राइल के ज़ायनवादी सेटलर कलोनियल राज्य की असलियत उजागर हो रही है। भारत में 'इण्डियन पीपल इन सोलिडैरिटी विथ पैलेसटाइन' (आईपीएसपी) और 'बीडीएस इण्डिया' की ओर से यह मुहिम चलायी जा रही है। विश्व मंच पर तटस्थता की नौटंकी करते हुए फ़िलिस्तीन के पक्ष में वोट करने वाले भारत के शासक फ़िलिस्तीन के पक्ष में उठ रहे आवाज़ों का बर्बर दमन करने पर उतारू है। गोरखपुर, दिल्ली, पुणे, इलाहाबाद जैसे शहरों में फ़ासिस्टों की शह पर आईपीएसपी के कार्यकर्ताओं को पुलिसिया दमन का सामना करना पड़ा और पड़ रहा है। लेकिन बर्बरता और दमन से न तो फ़िलिस्तीनी अवाम का हौसला पस्त हुआ है और न ही दुनिया भर के इंसाफ़पसन्द लोगों का। दमन के बावजूद दुनियाभर से फ़िलिस्तीनी मुक्ति संघर्ष के समर्थन में आवाज़ उठ रही है।

एक आँकड़ें के अनुसार दुनिया के 40 से अधिक देशों में लाखों लोगों ने फ़िलिस्तीन के समर्थन में प्रदर्शन किये है या कर रहे हैं। दुनिया भर के तमाम विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में छात्र सॉलिडेरिटी अभियान चला रहे हैं। तमाम फिल्मकार, लेखक, संगीतकार और कवि अपनी कला के माध्यम से फ़िलिस्तीन के पक्ष में आवाज़ उठा रहे हैं। दुनिया भर में सोशल मीडिया पर #फ्रीफ्रीपैलेस्टाइन, #स्टॉपजेनोसाइड, #सीज़फायरनाउ जैसे हैशटैग ट्रेंड कर रहे हैं।

दुनिया का इतिहास बताता है कि हर दमन और उत्पीड़न के ख़िलाफ़ और राष्ट्रीय मुक्ति के लिए चलने वाले संघषों में मज़दूर वर्ग कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ता रहा है। फ़िलिस्तीन में साम्राज्यवाद की शह पर चल रहे बर्बर नरसंहार के ख़िलाफ़ और फ़िलिस्तीनी जनता की मुक्ति संघर्ष के समर्थन में भी दुनियाभर के मज़दूर सड़कों पर उतर रहे हैं, प्रदर्शन और हड़तालें आयोजित कर रहे हैं।

इसी क्रम में कई यूरोपीय देशों में डॉक मज़दूरों ने ग़ज़ा के साथ एकजुटता ज़ाहिर करते हुए इज़रायल से जुड़े शिपमेण्ट और सप्लाई चेन पर काम को ठप्प कर दिया। इसमें विशेष रूप से बेल्जियम, आयरलैण्ड, इटली, ग्रीस और स्पेन के डॉक मज़दूर संगठन शामिल रहे हैं। फ्रांस और पुर्तगाल की पोस्टल यूनियनें भी इस प्रदर्शन में शामिल रहीं। डॉक मज़दूर संगठनों ने इज़राइल को हथियार या सैन्य सामग्री पहुँचाने वाले पार्सल या शिपमेण्ट को सम्भालने से इन्कार कर दिया। ग्रीस में पीरियस पोर्ट पर डॉक मजदूरों ने ऐसे जहाज़ों को रोका, जिनमें हथियारों की खेप थी। इसी तरह इटली में यूएसबी यूनियन सिण्डिकेट डिबेस ने कई बार ऐलान किया कि वे हथियार लदे जहाज़ों को रोकेंगे. रोम और जिनेवा जैसे बंदरगाहों पर बड़े पैमाने पर प्रदर्शन हुए। फ्रांस में डॉक वर्कर्स ने एफ-35 जेट पार्सल को ले जाने वाले जहाज़ को समय से लेट कर दिया और मज़दूरों ने सरकार पर दबाव बनाया कि सरकार हथियारों का निर्यात बन्द करे। इसके अलावा 'यूरोपियन ट्रेड यूनियन नेटवर्क फॉर जस्टिस इन पैलेस्टाइन' ने बयान ज़ारी किया कि मज़दूर वर्ग फ़िलीस्तीनी जनता की आज़ादी और न्याय की लड़ाई में उसके साथ खड़ा है। स्वीडन में डॉक वर्कर्स यूनियन एसडीओ ने साफ़ घोषणा की कि इज़रायल के लिए सैन्य सामान लोड-अनलोड नहीं करेंगे। न्याय के पक्ष में बोलने और संघर्ष करने की क़ीमत इन मज़दूरों ने चुकायी भी, हालाँकि तब भी वे डटे रहे। छः दिन तक चले इस आन्दोलन से बौखलाया स्वीडन का शासक वर्ग अब मज़दूर नेताओं को चिन्हित कर उनकों नौकरियों से निलम्बित कर रहा है। आन्दोलन को नेतृत्व दे रहे एसडीयू यूनियन के उपाध्यक्ष को काम से निकाल दिया गया।

मालिक वर्ग मज़दूरों की बढ़ती राजनीतिक चेतना और सर्वहारा अन्तरराष्ट्रीयतावाद से किस क़दर भयभीत रहता है इसका एक नमूना स्वीडन के संसद में देखने को मिला। यूरोप के डॉक मज़दूरों का यह संघर्ष स्वीडन के संसद में भी बड़ा मुद्दा बना। संसद में चर्चा का मुख्य विषय ही यही था कि क्या मज़दूरों को अपने वेतन-भत्ते बढ़ाने की लड़ाई के साथ अन्तरराष्ट्रीय स्तर के मुद्दों में हस्तक्षेप करना चाहिए? मज़दूर साथियों! इस उदहारण से भी हम समझ सकते हैं कि वेतन-भत्ता बढ़ाने समेत ट्रेड यूनियन संघर्ष को केवल आर्थिक मांगों तक सीमित नहीं किया जा सकता है। अर्थवादी संघर्ष से मालिक वर्ग को कोई ख़ास समस्या नहीं होती है। मालिक वर्ग की बौखलाहट उस वक़्त शुरू होती है जब मज़दूर वर्ग आर्थिक लड़ाइयों से आगे बढ़कर राजनीतिक संघर्ष के क्षेत्र में प्रवेश करता है। इसलिए जो भी मज़दूर यूनियन हमें केवल अर्थवादी लड़ाइयों के गोल चक्कर में उलझाये रखती हैं वह मज़दूर वर्ग से ग़द्दारी कर चुकी हैं। यूरोप के हमारे मज़दूर साथियों ने अपने हालिया संघर्षों के ज़रिये इसी बात को पुनः रेखांकित किया है।

दुनिया भर के मज़दूरों ने ग़ज़ा के साथ अपनी एकजुटता क़ायम करके सर्वहारा अन्तरराष्ट्रीयतावाद की अद्वितीय मिसाल पेश की है। हम भारतीय मज़दूरों को भी स्पष्ट समझना चाहिए कि मुक्ति कभी अकेले नहीं मिलती है। दुनिया में जहाँ पर भी लोग न्याय, बराबरी और आज़ादी के लिए संघर्ष कर रहे हैं वे हमारे अपने लोग हैं। अगर हम अपनी मुक्ति के रास्ते तलाश रहे हैं तो हमें समझना होगा कि 1948 से पहले दुनिया के नक़्शे पर इज़रायल जैसा कोई देश था ही नहीं। 20वीं सदी के पहले दशक में मध्य-पूर्व के इलाक़े में कच्चे तेल का अकूत भण्डार मिला जो देखते-देखते कुछ ही वर्षों में पश्चिमी साम्राज्यवादी दैत्यों के लिए सबसे रणनीतिक माल बन गया। इसी माल पर क़ब्ज़ा ज़माने के मक़सद से ब्रिटेन ने ज़ायनवादी हत्यारे गिरोहों को फ़िलिस्तीन की ज़मीन पर ले जाकर बसाना शुरू किया। साम्राज्यवादी ताकतों ने इन जायनवादी हत्यारों को हथियारों से लैस किया और फिर 1917 से 1948 के बीच हज़ारों फ़िलिस्तीनियों का क़त्लेआम किया गया और लाखों फ़िलिस्तीनियों को उनके ही वतन से बेदख़ल करने का काम शुरू हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व साम्राज्यवाद का नया चौधरी अमेरिका बना। मौजूदा दौर में आम तौर पर पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों और विशेष तौर पर अमेरिकी साम्राज्यवाद की सरपरस्ती में फिलिस्तिनियों के क़त्लेआम को अंजाम दिया जा रहा है। आज यह प्रक्रिया अपने सबसे बर्बर रूप में ज़ारी है।

यही कारण है कि हमें समझना होगा कि पूँजी के जिस जुए के नीचे आज हमारी ज़िन्दगी पिस रही है, वही पूँजी का पिशाच फिलिस्तीनियों को उनके अपने ही देश में शरणार्थी बनने को मज़बूर कर रहा है। यही पूँजी लाखों फिलिस्तीनियों के बर्बर क़त्लेआम के लिए ज़िम्मेदार है। ऐसे में ग़ज़ा में चल रहे बर्बर नरसंहार का विरोध करना और गज़ा के समर्थन में चल रहे अपने देश में आन्दोलनों को मज़बूत बनाना हमारे सामने एक फ़ौरी कार्यभार है।

नेपाल की क्रान्तिकारी ताक़तों के सामने इस विद्रोह को क्रान्ति की दिशा में मोड़ने की चुनौती

(पेज 1 से आगे)

दिन आन्दोलनकारियों और कुछ अन्य तत्वों द्वारा हिंसक प्रदर्शन के बाद ओली सरकार को इस्तीफ़ा देने पर मजबूर होना पड़ा।

ओली सरकार ने सोशल मीडिया ऐप्स पर प्रतिबन्ध की वजह यह बतायी थी कि इन सोशल मीडिया कम्पनियों ने सरकारी पंजीकरण नहीं कराया था। परन्तु नेपाल के लोगों और ख़ासकर युवाओं ने इसे उनके बोलने और अभिव्यक्ति की आज़ादी पर हमले के रूप में लिया और उन्हें यह समझने में देर नहीं लगी कि इस प्रतिबन्ध का असली मक़सद ओली सरकार के भ्रष्टाचार तथा नेताओं-मन्त्रियों व उनके परिजनों की विलासिता के ख़िलाफ़ उठ रही आवाज़ों को ख़ामोश करना था। ग़ौरतलब है कि पिछले कुछ वर्षों से नेपाल में जारी राजनीतिक अस्थिरता, आर्थिक तंगी, लगातार बढ़ती बेरोज़गारी, महँगाई, आर्थिक असमानता, भ्रष्टाचार एवं नेताओं की अश्लील विलासिता के ख़िलाफ़ वहाँ के आम लोगों और ख़ासकर युवाओं में ज़बर्दस्त आक्रोश पनप रहा था जो सोशल मीडिया पर चर्चा का विषय था। मौजूदा आन्दोलन के कुछ दिनों पहले से ही वहाँ सोशल मीडिया पर #Nepokids और #Nepobabies जैसे टैग वाले पोस्ट बहुत वायरल हो रहे थे जिनमें नेपाल के युवा वहाँ के नेताओं व अमीरज़ादों के भ्रष्टाचार और उनके परिजनों की अय्याशी और विलासिता का पर्दाफ़ाश कर रहे थे। 6 सितम्बर को ओली सरकार के एक मन्त्री की कार द्वारा एक लड़की को टक्कर मारने के बाद ओली द्वारा दिये गये बेहद संवेदनहीन बयान के बाद भी वहाँ लोगों में ओली सरकार के ख़िलाफ़ आक्रोश देखने में आया था जो उस सरकार की बढ़ती अलोकप्रियता का ही संकेत था। ओली सरकार द्वारा सोशल मीडिया पर लगाये गये प्रतिबन्ध ने पहले से ही सुलग रही जनाक्रोश की आग में घी डालने का काम किया।

नेपाल के युवाओं का विद्रोह सिर्फ़ सत्तारूढ़ संशोधनवादी पार्टी या उसके नेताओं के ख़िलाफ़ ही नहीं बल्कि उन सभी पार्टियो व नेताओं एवं धन्नासेठों के ख़िलाफ़ था जिन्होंने पिछले 2 दशकों के दौरान सत्ता में भागीदारी की या जो सत्ता के निकट रहे हैं। यही वजह है कि प्रदर्शनकारियों के निशाने पर संसद, प्रधानमन्त्री निवास, शासकीय व प्रशासनिक मुख्यालय, उच्चतम न्यायालय के अलावा तमाम बड़ी पार्टियों के कार्यालय और उनके नेताओं के आवास भी थे जिनमें पाँच बार नेपाल के प्रधानमन्त्री रह चुके शेर बहादुर देउबा और माओवादी नेता व पूर्व प्रधानमन्त्री प्रचण्ड के आवास भी शामिल थे। इसके अलावा प्रदर्शनकारियों ने काठमांडू की कई बहुमंज़िला व्यावसायिक इमारतों और आलीशान होटलों में भी आग लगा दी जो धनाढ्यता का प्रतीक थीं। इस प्रकार यह बग़ावत वस्तुत: समूचे पूँजीवादी निज़ाम के ख़िलाफ़ थी।

ज्ञात हो कि युवाओं का यह विद्रोह नेपाल का पहला विद्रोह नहीं है। नेपाल का हालिया इतिहास वहाँ के युवाओं और मेहनतकशों के जुझारू जनान्दोलनों और बग़ावतों का इतिहास

रहा है, परन्तु इस बार युवाओं की बग़ावत की विशिष्टता यह है कि यह ऐसे युवाओं का विद्रोह है जिन्होंने अपने होश गणतान्त्रिक नेपाल में सँभाले हैं और उनके ज़ेहन में राजशाही की यादें नहीं हैं। उनकी आकांक्षाएँ और सपने गणतान्त्रिक नेपाल में पैदा हुईं और इन आकांक्षाओं और सपनों को पूरा करने में मौजूदा पूँजीवादी निज़ाम निहायत ही अक्षम साबित हुआ है। ग़ौरतलब है कि नेपाल में माओवादियों के नेतृत्व में एक दशक तक चले जनयुद्ध के नतीजे में 2008 में राजशाही के ख़ात्मे के बाद से वहाँ बहुदलीय बुर्जुआ लोकतान्त्रिक व्यवस्था अस्तित्व में है। लोगों को उम्मीद थी कि सामन्ती राजाशाही के ख़ात्मे के बाद नेपाली समाज बराबरी की दिशा में आगे बढ़ेगा और लोगों की ज़िन्दगी में ख़ुशहाली आयेगी और राजनीतिक पार्टियाँ और ख़ास तौर पर माओवादी जनता की आकांक्षाओं को पूरा करने का प्रयास करेंगे। परन्तु पिछले 17 सालों में माओवादियों सहित सभी पार्टियों के नेता भ्रष्टाचार के दलदल में आकण्ठ डूब गये। जहाँ एक ओर जनता ग़रीबी, भुखमरी, बेरोज़गारी, महँगाई और आर्थिक तंगी से त्रस्त है वहीं दूसरी ओर नेता-मन्त्री और अनके परिजन विलासिता भरा जीवन बिताते हैं। इन वजहों से पिछले कई वर्षों से लोगों में आक्रोश पनप रहा था।

आर्थिक धरातल पर भी राजशाही के ख़ात्मे के बाद जनपक्षधर क़दम नहीं उठाये गये। माओवादियों द्वारा रैडिकल भूमि सुधार करने का वायदा संसद के गलियारों में गुम हो गया। औद्योगिकीकरण की दिशा में कोई ठोस प्रयास करने के बजाय नवउदारवादी नीतियों को ही लागू किया गया। इसका नतीजा यह हुआ कि वहाँ की अर्थव्यवस्था में नये रोज़गार पैदा नहीं हो सके। नेपाल में बेरोज़गारी का आलम यह है कि वहाँ हर साल 7-8 लाख युवाओं को काम की तलाश में खाड़ी के देशों, भारत, जापान, दक्षिण कोरिया, अमेरिका और यूरोप के देशों में काम करने के लिए मजबूर होना पड़ता है। विश्व बैंक के अनुसार नेपाल में बेरोज़गारी दर 20 प्रतिशत है। कहने की ज़रूरत नहीं कि वास्तविक बेरोज़गारी इन आधिकारिक आँकड़ों से कहीं अधिक होगी। नेपाल की कुल आबादी 3 करोड़ है और उसमें से 60 लाख से ज़्यादा लोग देश के बाहर काम करते हैं। चूँकि नेपाल से भारत में पलायन करने वाले लोगों का कोई आधिकारिक आँकड़ा नहीं मौजूद है इसलिए एक अनुमान के मुताबिक़ नेपाल से बाहर काम कर रहे नेपाली लोागों की कुल संख्या नेपाल की कुल आबादी की एक-तिहाई के क़रीब है। नेपाल की अर्थव्यवस्था की लचर हालत का अन्दाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि वहाँ के जीडीपी का लगभग एक-तिहाई देश के बाहर काम कर रहे प्रवासी नेपालियों द्वारा अपने परिजनों को भेजे जा रहे पैसे (रेमिटेंस) से आता है। इसके अलावा आयात पर अति-निर्भरता की वजह से वहाँ महँगाई की दर लगातार बहुत अधिक रहती है। ये तंग आर्थिक हालात लोगों के असन्तोष को लगातार बढ़ाते आये हैं। 8 और 9 सितम्बर को नेपाल में हुआ नाटकीय घटनाक्रम इस असन्तोष की ही तार्किक परिणति है।

नेपाल के युवाओं के विद्रोह के वस्तुगत कारकों को समझने के साथ ही साथ उसके मनोगत कारकों को भी समझना ज़रूरी है। 2008 के बाद माओवादियों द्वारा संसद के शरणागत होने और उनके भ्रष्ट व पतित आचरण के बाद नेपाल के आम लोगों और युवाओं का न सिर्फ़ माओवादी पार्टी से मोहभंग हुआ बल्कि उनमें से बड़ी संख्या में लोगों का मार्क्सवाद की विचारधारा से भी मोहभंग हुआ है। इस मोहभंग की परिस्थिति का लाभ वहाँ के समाज में तमाम मार्क्सवाद-विरोधी ताक़तों और विचारधाराओं ने उठाया है। पिछले कुछ वर्षों के दौरान अमेरिकी साम्राज्यवाद द्वारा पोषित तमाम एनजीओ और आइएनजीओ नेपाल में फले-फूले हैं जो वहाँ के युवाओं की राजनीतिक चेतना को कुन्द करने का काम करते हैं। ये संगठन लोगों के आक्रोश को व्यवस्था परिवर्तन की दिशा में ले जाने के बजाय पूँजीवाद के दायरे के भीतर ही किसी "साफ़ छवि वाली" पार्टी या नेता को चुनने की दिशा में ले जाते हैं। 8 सितम्बर को हुए प्रदर्शन में प्रमुखता से शामिल 'हामी नेपाल' नामक एनजीओ और उसके नेता सुदन गुरुंग की राजनीति ऐसी ही है। ऐसे में इसमें ताज्जुब की कोई बात नहीं है कि इस आन्दोलन की कोई रणनीति या दिशा नहीं थी और वह सत्ता परिवर्तन से आगे बढ़कर व्यवस्था परिवर्तन की ओर नहीं बढ़ पाया। क्रान्ति से लोगों के मोहभंग की स्थिति का लाभ उठाकर लोगों का अराजनीतिकरण करने वाली राजनीति का बोलबाला हो गया। इसका नतीजा कुछ वर्ष पहले काठमांडू के मेयर के चुनाव में बालेन्द्र शाह जैसे दक्षिणपन्थी लोकरंजकतावादी नेता की जीत के रूप में सामने आया था जिसकी राजनीति भ्रष्टाचार-विरोध से आगे नहीं जाती है और वह बेशर्मी से काठमांडू के ठेला-रेहड़ी लगाकर बमुश्किल जीवनयापन कर रहे ग़रीबों पर बेरहमी से कार्रवाई करता है। नेपाल के जेन-ज़ी युवाओं में उसकी लोकप्रियता लगातार बढ़ी है। इसी प्रकार की अराजनीतिक राजनीति की एक अन्य अभिव्यक्ति 2022 के आम चुनावों में पूर्व टेलीविज़न एंकर रबी लामिछाने के नेतृत्व वाली 'राष्ट्रीय स्वतन्त्र पार्टी' जैसी दक्षिणपन्थी लोकरंजकतावादी पार्टी के उभार के रूप में सामने आयी थी। यह पार्टी भी विचारधारा से मुक्त होने की बात करती है। इसके अतिरिक्त माओवादियों सहित मुख्य धारा की अन्य पार्टियों से लोगों का मोहभंग होने की परिस्थिति में 'राष्ट्रीय प्रजातान्त्रिक पार्टी' नामक एक पार्टी भी उभर कर आयी है जो नेपाल में राजशाही की वापसी की बात करती है और उसके भारत के हिन्दुत्ववादी फ़ासिस्टों के साथ भी गहरे सम्बन्ध हैं। युवाओं के विद्रोह के कुछ हफ़्तों पहले इस पार्टी ने नेपाल के कई शहरों में राजशाही की वापसी के लिए आन्दोलन भी किये थे। हालाँकि अभी भी इस पार्टी का कोई ख़ास जनाधार नहीं है। इन सभी ताक़तों ने युवाओं के स्वत:स्फूर्त विद्रोह में घुसपैठ की है।

हाल के वर्षों में अगर नेपाल की राजनीति में इस प्रकार की प्रतिक्रियावादी ताक़तें उभरी हैं तो उसकी एक वजह यह भी है कि वहाँ के क्रान्तिकारी आन्दोलन में बिखराव और भटकाव की स्थिति है। माओवादियों से अलग होकर कई छोटे-छोटे समूह व संगठन अस्तित्व में आये हैं, परन्तु उनमें से अधिकांश में पहचान की राजनीति और उत्तरआधुनिकतावाद की विचार सरणियों का ज़बर्दस्त असर देखने में आया है। नेपाल के समाज के ठोस अध्ययन पर आधारित एक क्रान्तिकारी कार्यक्रम तैयार करके उसके इर्द-गिर्द जनता की ठोस माँगों पर जनान्दोलन खड़ा करने के बजाय ऐसे कुछ संगठन मौजूदा व्यवस्था और पार्टी के दायरे में ही विभिन्न जातियों, जनजातियों, जेण्डरों, राष्ट्रीयताओं आदि के प्रतिनिधित्व पर ही ज़ोर देते हैं। इस प्रकार की पहचान की राजनीति भी लोगों की वर्गीय चेतना को कुन्द करने का काम करती है। इसके साथ ही वहाँ के क्रान्तिकारी आन्दोलन में जड़सूत्रवाद और मुक्त चिन्तन के दो छोर भी मौजूद हैं जो जनता को सही मुद्दों पर लामबन्द करने में बाधा पैदा कर रहे हैं। क्रान्तिकारी आन्दोलन में बिखराव और भटकाव की इन परिस्थितियों का ही लाभ क़िस्म-क़िस्म के एनजीओपन्थियों और बीरेन्द्र शाह तथा रबी लामिछाने जैसे नेताओं को हुआ है। नेपाल के जनान्दोलनों में साम्राज्यवादी व बाहरी ताक़तों की घुसपैठ भी क्रान्तिकारी आन्दोलन की इन्हीं कमज़ोरियों की वजह से हुई है।

हालाँकि युवाओं के विद्रोह ने दो दिन के भीतर ही ओली सरकार को ध्वस्त कर दिया, परन्तु मौजूदा व्यवस्था के विकल्प और भविष्य की कोई दिशा न होने की वजह से शासक वर्ग पुराने अलोकप्रिय चेहरों के बदले नये स्वीकार्य चेहरों को आगे करके अपने शासन को बचाने में सफल होता हुआ दिख रहा है। आज नेपाल की बिखरी हुई क्रान्तिकारी ताक़तों के सम्मुख इस दिशाहीन विद्रोह को क्रान्तिकारी दिशा देकर व्यवस्था परिवर्तन की दिशा में मोड़ने की चुनौती आन खड़ी हुई है। नेपाल में जारी मौजूदा उथल-पुथल ने वहाँ की क्रान्तिकारी ताक़तों के सामने युवाओं के बीच वर्गीय राजनीति के प्रचार-प्रसार का एक ऐतिहासिक अवसर भी पैदा किया है। यह उम्मीद की जा सकती है कि नेपाल की क्रान्तिकारी ताक़तें अपने इस ऐतिहासिक दायित्व को समझते हुए जनता की परिवर्तनकामी आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए एक क्रान्तिकारी कार्यक्रम के तहत मौजूदा क्रान्तिकारी परिस्थिति को व्यवस्था परिवर्तन की दिशा में मोड़ने के लिए जी-जान से जुटेंगी। अगर ऐसा नहीं होता है और अगर क्रान्तिकारी ताक़तें आत्म चिन्तन व आलोचना-आत्मालोचना के ज़रिये अपने भटकावों को दूर नहीं करती हैं तो श्रीलंका व बांग्लादेश की ही भाँति नेपाल में भी मनोगत ताक़तों की कमज़ोरी की वजह से सत्ता परिवर्तन व्यवस्था परिवर्तन की दिशा में नहीं बढ़ सकेगा और समाज में प्रतिक्रियावादी ताक़तें हावी हो जायेंगी।

क्या स्वत:स्फूर्त विद्रोह पर्याप्त है?

(पेज 1 से आगे)

अरब विश्व में अरब बसन्त का जनउभार, तुर्की में गेज़ी पार्क आन्दोलन इसी दीर्घकालिक प्रक्रिया का अंग थे। ग़ौरतलब है कि 2007 के अन्त में ही इक्कीसवीं सदी की पहली महामन्दी की शुरुआत हुई थी, जिससे विश्व पूँजीवादी व्यवस्था कभी पूरी तरह से उबर नहीं पायी है और रह-रहकर औंधे मुँह गिरती रही है।

हमारे देश में भी वैश्विक मन्दी का असर 2011-12 से सघनता के साथ प्रकट होने लगे थे। इससे पैदा जनअसन्तोष को अण्णा हज़ारे नामक प्रतिक्रियावादी दक्षिणपन्थी प्यादे का इस्तेमाल कर फ़ासीवादी ताक़तों ने दक्षिणपन्थी दिशा में मोड़ा और यही प्रक्रिया अन्त में 2014 में मोदी सरकार के सत्तासीन होने के रूप में परिणत हुई। इसका ख़ामियाज़ा देश की जनता अभी तक भुगत रही है। पिछले 11 वर्षों में मोदी सरकार ने राज्यसत्ता के तमाम उपकरणों पर फ़ासीवादी शक्तियों की आन्तरिक पकड़ को गुणात्मक रूप से बढ़ाया है, इस दौर में समाज में टुटपुँजिया वर्गों के बीच की अन्धी फ़ासीवादी प्रतिक्रिया को बढ़ाते हुए फ़ासीवादी सामाजिक आन्दोलन को भी सुदृढ़ किया है और भारत में पूँजीवादी लोकतन्त्र के खोल को बनाये रखते हुए उसकी अन्तर्वस्तु को अधिकाधिक खोखला बना दिया है। इस समूची प्रक्रिया का नतीजा यह है कि आज चुनावों की समूची प्रक्रिया को ही मोदी सरकार वोट चोरी व चुनावी घपले के अन्य रूपों के ज़रिये बेकार बनाने पर तुली हुई है और काफ़ी हद तक बना भी दिया है।

न्यायपालिका, नौकरशाही, पुलिस प्रशासन, सेना, ईडी व केन्द्रीय चुनाव आयोग जैसी संस्थाओं की क्या स्थिति हो गयी है, इससे जनता का बड़ा हिस्सा वाक़िफ़ हो चुका है। लोकतन्त्र का "चौथा खम्भा" ऐसी स्थिति में पहुँच गया है कि कोई श्वान प्रजाति का जीव उस पर मूत्र-विसर्जन करना भी पसन्द नहीं करेगा और नतीजतन जनता का बहुलांश उसे 'गोदी मीडिया' की संज्ञा देने लगा है। पूँजीपति वर्ग का बड़ा हिस्सा अभी भी मोदी सरकार के पीछे मज़बूती से खड़ा है क्योंकि आर्थिक संकट के दौर में उसे एक फ़ासीवादी शासन की आवश्यकता है जो एक ओर मज़दूरों व आम मेहनतकश आबादी की मज़दूरी और आय को नीचे गिराये, पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े की औसत दर को बढ़ाये, जनता की सार्वजनिक सम्पत्ति को निजी मालिकों के हवाले करे, जनता के प्रतिरोध का बर्बर दमन करे और इस प्रकार मन्दी से पूँजीपति वर्ग को राहत दे। लेकिन पूँजीपति वर्ग के समर्थन और जनता के टुटपुँजिया वर्ग के एक व्यवस्थित रूप से साम्प्रदायिकीकृत हिस्से को छोड़कर मोदी सरकार जनता के बड़े हिस्से में जनवैधता खो चुकी है और यह अब साफ़ तौर पर दिख रहा है। साथ ही, देश भर में अर्थव्यवस्था के भयंकर कुप्रबन्धन के साथ-साथ राजनीतिक मसलों को सम्भालने के मामले में भी मोदी सरकार अपने इस संकट के दौर में भारी ग़लतियाँ करने को बाध्य है।

नतीजतन, देश भर में असमानता, बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार, महँगी होती शिक्षा के मसले पर व्यापक छात्र-युवा आबादी में भारी असन्तोष है जो उत्तराखण्ड समेत तमाम जगहों पर जब-तब फूट पड़ रहा है। मेहनतकश जनता में भी भयंकर गुस्सा सुलग रहा है। उसकी औसत मज़दूरी व आय को गिराने का हर क़दम मोदी सरकार धड़ल्ले से उठाती रही है और अभी भी उठा रही है। हालिया रिपोर्ट के अनुसार भारत में संगठित क्षेत्र के मैन्युफैक्चरिंग उत्पादन में पहली बार ठेका व अस्थायी मज़दूरों का हिस्सा 42 प्रतिशत तक पहुँच चुका है। नये लेबर कोडों के लागू हुए बिना ही यह स्थिति है तो अस्थायीकरण के नये-नये रूपों को नये-नये नामों के साथ बढ़ाने के लिए बनाये गये इन नये लेबर कोडों के लागू होने के बाद अनौपचारिकीकरण की दर में किस गति से बढ़ोत्तरी होगी, यह समझा जा सकता है। भयंकर बेरोज़गारी से मजबूर हम मेहनतकश-मज़दूर अभी ठेका, अस्थायी, अप्रेण्टिस, ट्रेनी आदि के नाम पर बेहद कम मज़दूरी पर काम करने को मजबूर हैं और जो भी काम मिल रहा है उसे पकड़ने के अलावा हमारे पास फिलहाल कोई रास्ता नहीं दिखता। लेकिन समूचे सामाजिक पैमाने पर यह स्थिति आने वाले समय में व्यापक मज़दूर आबादी में विस्फोटक गुस्से को जन्म देगा क्योंकि ये चीज़ें श्रम और पूँजी के अन्तरविरोध और नतीजतन मज़दूर वर्ग और पूँजीपति वर्ग के बीच के अन्तरविरोध को बेहद तेज़ी से तीखा बनायेंगी। मेहनतकशों के बीच और मज़दूर आन्दोलन में आज जो सापेक्षिक शान्ति नज़र आ रही है, वह हमेशा नहीं बनी रहेगी और महज़ यहाँ-वहाँ फूट पड़ने के बजाय मज़दूरों में व्यापक असन्तोष और गुस्सा एक व्यापक आन्दोलन का रूप भी ले सकता है। अगर मज़दूर अपने बीच मौजूद भितरघातियों को किनारे लगाने में क़ामयाब होते हैं, यानी माकपा, भाकपा, भाकपा (माले) लिबरेशन जैसी नकली वाम पार्टियों और उनकी अर्थवादी ट्रेड यूनियनों, मसलन, सीटू, एटक व ऐक्टू को, तो आने वाले दिनों में मज़दूरों के बीच से भी किसी व्यापक विद्रोह के फूट पड़ने की सम्भावनाओं से इन्कार नहीं किया जा सकता है।

लद्दाख़ में सोनम वांगचुक के नेतृत्व में राज्य के दर्जे के लिए जारी जनान्दोलन से लेकर पेपर लीक के मसले पर उत्तराखण्ड में जारी युवा आन्दोलन तक हमारे देश में भी अलग-अलग मसलों पर यहाँ-वहाँ जनता का असन्तोष राजनीतिक और आर्थिक अधिकारों के लिए फूट रहा है। सच है कि इसने अभी श्रीलंका, बंगलादेश या नेपाल की तरह देशव्यापी स्वरूप अख्तियार नहीं किया है और शायद निकट भविष्य में ऐसा हो भी नहीं, क्योंकि भारत के शासक वर्ग और इन पड़ोसी देशों के शासक वर्ग के इतिहास और उनके वर्चस्व की जड़ों में काफ़ी अन्तर है। लेकिन देश के शासक वर्गों को डराने के लिए यहाँ-वहाँ हो रही उथल-पुथल और पड़ोसी देशों में हो रहे जनविद्रोह भी आज के हालात में भारतीय शासक वर्गों की आत्मा में सिहरन पैदा कर देने के लिए पर्याप्त हैं। साथ ही, वोट चोरी के मसले पर भी देश की जनता में एक गुस्सा और असन्तोष सुलग रहा है। यह बात अब स्पष्ट तौर पर सामने आ चुकी है कि भाजपा ने चुनावों को और उसमें आने वाले जनादेश को चुराया है और इस प्रकार पूँजीवादी लोकतन्त्र के भीतर जनता को मिलने वाले एक राजनीतिक जनवादी अधिकार का हनन किया है।

दक्षिण एशिया में तमाम देशों में हुए शासन-परिवर्तन और हमारे देश में मौजूद सतह के नीचे सुलग रहे जनअसन्तोष के आधार पर कई लोग ऐसा क़यास लगा रहे हैं कि भारत में भी कोई स्वत:स्फूर्त देशव्यापी युवा उभार हो सकता है और उस सूरत में शासन-परिवर्तन भी हो सकता है। यूँ तो इसकी गुंजाइश फिलहाल कम नज़र आ रही है, लेकिन ऐसा हो भी तो ज़्यादा से ज़्यादा हम किस चीज़ की उम्मीद कर सकते हैं? इसे समझने के लिए उन सभी देशों में आज मौजूद सामाजिक-आर्थिक स्थिति का एक मूल्यांकन करें जिनमें पिछले 17-18 वर्षों में किसी जनान्दोलन या युवा उभार के कारण शासन-परिवर्तन हुए हैं, मसलन, मिस्र, ट्यूनीशिया, श्रीलंका, बंगलादेश, नेपाल। बाद के दो देशों में स्थितियाँ स्पष्ट होने में कुछ और समय लगेगा, लेकिन इतना साफ़ हो गया है कि मेहनतकश जनता की जीवन और कार्य स्थितियों में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं होने वाला है। वजह यह कि इन देशों में जो पूँजीवादी व्यवस्था मौजूद थी वह अभी भी मौजूद है। इन शासन-परिवर्तनों से पहले भी देश की समस्त सम्पदा के बहुलांश पर मुट्ठी-भर धन्नासेठों और मालिकों का कब्ज़ा था, अभी भी है। तब भी हर वस्तु और सेवा का उत्पादन इन मुट्ठी-भर मालिकों के मुनाफ़े की ख़ातिर होता था, न कि सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए; अब भी ऐसा ही है। तब भी देश की राज्यसत्ता पर पूँजीपति वर्ग काबिज़ था, अभी भी इन देशों में राज्यसत्ता पर पूँजीपति वर्ग ही काबिज़ है। फ़र्क सिर्फ़ इतना आया है कि शासक वर्ग के शासक ब्लॉक के विभिन्न धड़ों के आन्तरिक रिश्तों में फ़र्क आ गया है, सरकार बदल गयी है, शासक वर्ग का कोई नया चेहरा जनता के गुस्से को सोखने के लिए सत्ता में आ गया है। यही वजह है कि श्रीलंका में मेहनतकश जनता क्रान्ति का रास्ता छोड़ चुकी और उससे ग़द्दारी कर चुकी पार्टी जनता विमुक्ति पेरामुना के हाथों में श्रीलंका के पूँजीपति वर्ग ने सत्ता की बागडोर सौंपी। अन्य सुधारवादी, संशोधनवादी और सामाजिक-जनवादी बन चुकी पार्टियों के समान ही जेवीपी भी पूँजीपति वर्ग और पूँजीवादी व्यवस्था की आख़िरी सुरक्षा पंक्ति का काम श्रीलंका में निभा रही है। जब अन्य पूँजीवादी पार्टियाँ जनता का विश्वास खो चुकी हैं, जनता को विकल्प की तलाश है, लेकिन जनता के बीच कोई क्रान्तिकारी राजनीतिक नेतृत्व नहीं हैं, तो जेवीपी के दिस्सानायके सामने आये हैं पूँजीवादी व्यवस्था की रक्षा के लिए।

सामाजिक-जनवादी व सुधारवादी पार्टियों का चरित्र जनता के बीच सबसे देर से नंगा होता है, विशेष तौर पर तब जबकि वे विचारणीय समय तक सत्ता में रह जायें। जेवीपी के साथ भी ऐसा ही होगा और ऐसा होना शुरू हो चुका है।

उसी प्रकार बंगलादेश में साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के दूरदर्शी पहरेदार और सुधारवादी अर्थशास्त्री व बैंकर मुहम्मद युनुस नये शासक बने हैं। राजनीतिक कार्यक्रम, दिशा और नेतृत्व से वंचित विद्रोही युवाओं को ऐसे चरित्र आसानी से भटका सकते हैं। इसलिए क्योंकि सम्भवत: उन पर व्यक्तिगत भ्रष्टाचार का कोई आरोप नहीं होता और सम्भवत: वह भाई-भतीजावाद नहीं करते हैं। लेकिन यह वही मुहम्मद युनुस हैं जिन्होंने बंगलादेश के शासक वर्गों को एक समय चेताया था कि निर्बन्ध पूँजीवादी लूट से देश में विद्रोह हो सकता है, गाँव के ग़रीबों को पूरी तरह से बरबाद करने और शहरों की ओर उनके प्रवास की प्रक्रिया की रफ़्तार को धीमा करना होगा क्योंकि शहरी असन्तोष समूची व्यवस्था के लिए ख़तरनाक़ हो सकता है। इसके इलाज के तौर पर उन्होंने ग्रामीण बैंक, बंगलादेश के कर्ता-धर्ता के तौर पर सूक्ष्म ऋण योजना शुरू की थी, जिसका मक़सद था एक ओर भयंकर ब्याज दरों के ज़रिये ग़रीब मेहनतकशों के शरीर से ख़ून चूसना और वित्त पूँजी को लाभ पहुँचाना, वहीं दूसरी ओर ग़रीबों को भुखमरी के स्तर पर उद्यमी बन जाने के भ्रम के साथ ज़िन्दा रखना। और इसके लिए मुहम्मद युनुस को अर्थशास्त्र का नोबेल पुरस्कार नहीं मिला, बल्कि शान्ति का नोबेल पुरस्कार मिला! क्यों? क्योंकि उन्होंने एक देश में पूँजीवादी अन्यायपूर्ण 'शान्ति' को दीर्घजीवी बनाने में बंगलादेश के शासक पूँजीपति वर्ग की सहायता की थी और दुनिया भर के पिछड़े पूँजीवादी देशों के शासक वर्ग के लिए एक उपयोगी नुस्खा पेश किया था।

इसी प्रकार, नेपाल में न्यायपालिका के एक शख़्स को युवाओं के विद्रोह और ओली सरकार के पतन के बाद अन्तरिम सरकार की बागडोर सौंपी गयी। न्यायपालिका पूँजीवादी राज्यसत्ता के उन निकायों में से होती है, जिसका पूँजीवादी चरित्र जनता के सामने सबसे कम और सबसे देर से साफ़ होता है। जनता के अच्छे-ख़ासे हिस्से को यह भ्रम होता है कि न्यायपालिका तो निष्पक्ष है और वह कोई निरपेक्ष और वर्गेतर न्याय करती है। इस वजह से दुनिया में पहले भी पूँजीपति वर्ग ने अपने राजनीतिक संकट के दौरों में न्यायपालिका के लोगों का इस्तेमाल किया है। सच्चाई यह है कि पूँजीवादी व्यवस्था में न्यायपालिका पूँजीवादी सम्बन्धों की ही रक्षा करती है। चूँकि वह पूँजीपति वर्ग के भीतर के, जनता के भीतर के, पूँजीपति वर्ग और मध्य वर्ग के भीतर के, पूँजीपति वर्ग और मेहनतकश जनता के भीतर के विवादों, सभी का निपटारा करती है, इसलिए निष्पक्ष प्रतीत होती है क्योंकि पूँजीपति वर्ग और मेहनतकश जनता के बीच के विवादों के निपटारों का मामला छोड़ दिया जाय, तो आम तौर पर वह अन्य विवादों के निपटारे में निष्पक्षता की एक तस्वीर पेश करती है। साथ ही, कई बार पूँजीवादी व्यवस्था के दूरगामी हितों के मद्देनज़र वह किसी एक या कुछेक पूँजीपतियों के हितों के बजाय मज़दूरों के हित में फैसला देती है क्योंकि पूँजीपति वर्ग के हितों की रखवाली के लिए यह आवश्यक होता है कि उसके दूरगामी सामूहिक राजनीतिक वर्ग हितों की रक्षा की जाय और कई बार यह एक या कुछ पूँजीपतियों के हितों की क़ीमत पर ही सम्भव हो पाता है। यही वजह है कि न्यायपालिका को लेकर हम मज़दूरों, मेहनतकशों और आम जनता में कई

(पेज 10 पर जारी)

क्या स्वत:स्फूर्त विद्रोह पर्याप्त है?

(पेज 9 से आगे)

भ्रम-विभ्रम बने रहते हैं और हम उस पर काफ़ी धैर्य के साथ भरोसा जमाये रहते हैं। यही वजह है कि नेपाल के शासक वर्ग ने अपने सभी राजनीतिक मुखौटों के फिलहाल मैला हो जाने के कारण न्यायपालिका से आयीं और भूतपूर्व जज सुशीला कार्की के हाथों में अन्तरिम सरकार की सत्ता सौंपी है।

ये अपेक्षाकृत "साफ़ चेहरे" या "साफ़ मुखौटे" पूँजीवादी व्यवस्था को तात्कालिक संकट से बचाते हैं, जनता का गुस्सा सोखते हैं, व्यवस्था-परिवर्तन के बिना पूँजीवादी व्यवस्था के दायरे के भीतर "परिवर्तन" का दृष्टि-भ्रम पैदा करने का काम करते हैं, छीन लिये गये राजनीतिक जनवादी अधिकारों को बहाल करने वाले कुछ प्रतीकात्मक क़दम उठाते हैं, कुछ क़ानूनी सुधार करते हैं, और इस प्रकार जारी जन-आँधी के गुज़र जाने तक पूँजीवादी व्यवस्था की रक्षा करते हैं। जब तक व्यापक मेहनतकश जनता के पास एक क्रान्तिकारी राजनीतिक कार्यक्रम, क्रान्तिकारी राजनीतिक लाइन, क्रान्तिकारी राजनीतिक संगठन और क्रान्तिकारी राजनीतिक नेतृत्व नहीं होगा, तब तक वह इन छलावों में आती ही रहेगी और एक समय बाद अपने गुस्से के सहयोजित कर लिये जाने के बाद, महज़ शासन-परिवर्तन कर और कुछ तात्कालिक विशिष्ट माँगों को जीतकर, और पूँजीवादी व्यवस्था को ज्यों का त्यों छोड़ अपने घर लौट जायेगी।

इसलिए हमारे सामने आज, जब दक्षिण एशिया उबाल पर है, तो यह सवाल फिर से उपस्थित है, जिसे हमने अरब जनउभार के ठीक बाद भी 'बिगुल' के पन्नों पर उठाया था: **क्या स्वत:स्फूर्त पूँजीवाद-विरोध और विद्रोह पर्याप्त है?** पिछले डेढ़ दशक का इतिहास दिखलाता है कि यह काफ़ी नहीं है। बिना एक क्रान्तिकारी सिद्धान्त के, बिना क्रान्तिकारी संगठन के कोई क्रान्तिकारी आन्दोलन, यानी ऐसा आन्दोलन नहीं सम्भव है जो महज़ शासन-परिवर्तन पर समाप्त न हो जाये, बल्कि व्यवस्था-परिवर्तन को अंजाम दे।

हमें यह समझना होगा कि पूँजीवादी व्यवस्था और उसकी रक्षा करने वाली पूँजीवादी राज्यसत्ता का चरित्र क्या है। पूँजीवादी समाज और व्यवस्था में उत्पादन के समस्त साधन पूँजीपति वर्ग के निजी स्वामित्व के मातहत होते हैं। ये उत्पादन के साधन उनके पुरखों ने उन्हें "कमाकर" नहीं दिये और न ही यह उनके पुरखों की क़ाबिलियत के बूते उन्हें मिले। ये उत्पादन के साधन लूट और ज़ोर-ज़बर्दस्ती के ज़रिये उनके हाथों में आये। पूँजीवादी विचारधारा हमें इस झूठ में यक़ीन दिलाना सिखाती है कि जो क़ाबिल था वह पूँजीपति व धनी बन गया, और हम ग़रीब इसलिए रह गये क्योंकि हम नाक़ाबिल थे! इस झूठ को यह व्यवस्था अपनी शिक्षा व्यवस्था व मीडिया द्वारा इतनी बार दुहराती है कि यह सच लगने लगता है। चूँकि हमारे पास समूचे समाज और इतिहास के ज्ञान तक सहज पहुँच नहीं होती है, इसलिए हममें से कई साथी इस झूठ का शिकार भी हो जाते हैं। सच्चाई यह है कि प्राकृतिक संसाधन प्रकृति द्वारा सभी को बराबर हक़ के साथ मिलने चाहिए और हर उत्पादन के साधन का उत्पादन स्वयं किसी एक मज़दूर ने नहीं बल्कि समूचे मज़दूर वर्ग ने मिलकर ही किया है, न कि किसी मालिक या धन्नासेठ ने। **नतीजतन, सभी प्राकृतिक संसाधनों पर समूचे समाज का सामूहिक हक़ होता है और साथ ही समस्त उत्पादन के साधन भी मेहनतकश वर्ग की सामूहिक सम्पत्ति होते हैं।**

लेकिन पूँजीवादी व्यवस्था में समस्त उत्पादन के साधन पूँजीपति वर्ग के इजारेदार मालिकाने के मातहत होते हैं। नतीजतन, जो वास्तव में प्रत्यक्ष उत्पादक हैं, यानी औद्योगिक और खेतिहर मज़दूर, वे अपनी श्रमशक्ति पूँजीपति (उद्योगपति, धनी व्यापारी, धनी किसान व भूस्वामी वर्ग) को बेचने को मजबूर होते हैं। दूसरी तरफ़, छोटे किसान और साधारण माल उत्पादक अपने उत्पादन के साधनों व ज़मीन के मालिक होते हैं, लेकिन वे पूँजीपति नहीं होते और मज़दूरों की श्रमशक्ति का शोषण नहीं करते, बल्कि अपने व अपने पारिवारिक श्रम के साथ स्वयं उत्पादन करते हैं। इन साधारण माल उत्पादकों को धनी किसान, आढ़ती, व्यापारी, सूदखोर व बिचौलिये असमान विनिमय के ज़रिये, यानी उनके मालों को उनके मूल्य से कम दाम पर ख़रीदकर या ब्याज के ज़रिये लूटते हैं। लेकिन ये साधारण माल उत्पादक प्रत्यक्ष उत्पादक होते हैं और मेहनतकश जनता का अंग होते हैं। आज तो इन साधारण माल उत्पादकों का बड़ा हिस्सा भी अर्द्ध-मज़दूर में तब्दील हो चुका है क्योंकि उनकी अपनी छोटी खेती या छोटे-मोटे धन्धे से उनके घर की अर्थव्यवस्था नहीं चलती और उन्हें पूँजीपतियों के यहाँ उजरती श्रम भी करना पड़ता है।

पूँजीवादी व्यवस्था मज़दूरों और मेहनतकश आबादी के इस शोषण व उनकी लूट पर ही टिकी होती है। पूँजीवादी राज्यसत्ता इन्हीं उत्पादन के सम्बन्धों की रक्षा करती है, अपने दमनकारी उपकरण के ज़रिये भी और अपने विचारधारात्मक उपकरणों के ज़रिये भी। ऐसी व्यवस्था और राज्यसत्ता को जड़ से उखाड़कर फेंकना ही मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश आबादी का अन्तिम लक्ष्य है। उनका लक्ष्य मज़दूरों व मेहनतकशों की सत्ता की स्थापना करना है और एक ऐसी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का निमार्ण करना है जिसमें उत्पादन, राज-काज और समाज के समूचे ढाँचे पर उत्पादन करने वाले वर्गों का अधिकार हो और फ़ैसला लेने की ताक़त उनके हाथों में हो। **यही समाजवादी क्रान्ति का कार्यक्रम है।**

पूँजीवादी व्यवस्था में मज़दूर और मेहनतकश वर्ग अपने रोज़मर्रा के आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक अधिकारों के लिए अपनी यूनियनों व अपने जनसंगठनों के ज़रिये संघर्ष करते हैं। लेकिन अगर उनका यह संघर्ष केवल इन्हीं आर्थिक माँगों को जीतने तक ही सीमित रह जाता है तो उनकी मुक्ति नहीं हो सकती है। इन संघर्षों का लक्ष्य भी यह होता है कि हम मेहनतकश मौजूदा व्यवस्था के समूचे चरित्र को उजागर करें, उसे समझें और यह जान लें कि इस व्यवस्था की चौहद्दियों के भीतर हमारी समस्याओं का कोई स्थायी समाधान नहीं हो सकता है। इसलिए मज़दूर वर्ग के लिए इन रोज़मर्रा के संघर्षों को भी अर्थवादी तरीक़े से नहीं बल्कि राजनीतिक तरीक़े से संगठित करना अनिवार्य है और यह भी अर्थवादी ट्रेड यूनियनों के ज़रिये सम्भव नहीं है। इसके लिए तमाम पूँजीवादी व नकली वाम पार्टियों की ट्रेड यूनियनों की जगह मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियनों को खड़ा करना ज़रूरी है, जो रोज़मर्रा के विशिष्ट संघर्षों को दूरगामी सामान्य संघर्ष से जोड़ सकें, उसकी एक कड़ी बना सकें। लेकिन फिर भी ये विभिन्न तात्कालिक व विशिष्ट माँगों को जीतने के लिए होने वाले ये संघर्ष मज़दूर वर्ग व आम मेहनतकश जनता की मुक्ति की परियोजना को मुक़ाम तक पहुँचाने के लिए काफ़ी नहीं हैं। इसके लिए पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़कर फेंकना और उसकी रक्षा करने वाली पूँजीवादी राज्यसत्ता का ध्वंस ही एकमात्र रास्ता है।

लेकिन एक क्रान्तिकारी पार्टी के बिना यह सम्भव नहीं है। क्योंकि एक क्रान्तिकारी पार्टी ही समूची मेहनतकश आबादी को देशव्यापी पैमाने पर एकजुट कर सकती है, न कि एक कारखाने, एक पेशे, एक क्षेत्र के आधार पर। देश का पूँजीपति वर्ग अपनी पूँजीवादी पार्टियों के ज़रिये अपने वर्ग हितों को संगठित करता है और एक राजनीतिक वर्ग के तौर पर अपने आपको संगठित कर अपनी सत्ता को चलाता है। उसकी राज्यसत्ता हमारे दमन का एक हिंसात्मक और संगठित उपकरण है। उसका ध्वंस तभी सम्भव है जब मेहनतकश जनता भी अपनी एक क्रान्तिकारी पार्टी के मातहत संगठित हो। साथ ही, इस क्रान्तिकारी पार्टी के ज़रिये ही मज़दूर वर्ग और मेहनतकश जनता अपने दुश्मन वर्गों और मित्र वर्गों की सही पहचान कर सकते हैं, क्रान्ति का सही लक्ष्य और कार्यक्रम निर्धारित कर सकते हैं और उसकी रणनीति और आम रणकौशल को निर्मित कर सकते हैं। ऐसी क्रान्तिकारी पार्टी ही व्यापक क्रान्तिकारी जनान्दोलनों को संगठित कर सकती है, उन्हें एक देशव्यापी क्रान्तिकारी कार्यक्रम के ज़रिये एक सूत्र में पिरो सकती है और पूँजीवादी राज्यसत्ता का ध्वंस कर एक मज़दूर सत्ता का निर्माण कर सकती है। **यानी, एक क्रान्तिकारी पार्टी, क्रान्तिकारी कार्यक्रम और क्रान्तिकारी जनान्दोलन के बिना आमूलगामी बदलाव सम्भव नहीं है।**

इनके अभाव में भी जब जनता के सब्र का प्याला छलकता है तो उसके अलग-अलग हिस्से, अलग-अलग मौक़ों पर, अलग-अलग मुद्दों पर सड़कों पर उतरते हैं, आन्दोलन करते हैं, विद्रोह करते हैं। शासक वर्ग को इससे तात्कालिक तौर पर बहुत-सी समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। लेकिन अगर ऐसे जनान्दोलनों में कोई क्रान्तिकारी पार्टी नेतृत्व में न हो, तो जनान्दोलन अपनी कुछ तात्कालिक विशिष्ट माँगों को पूरा करके शान्त हो जाते हैं। लोगों के दिल की भड़ाँस निकल जाती है। कई बार इससे शासन-परिवर्तन भी हो जाता है और पूँजीपति वर्ग अपने एक सन्तृप्त हो चुके मुखौटे को हटाकर कोई नया मुखौटा लगा लेता है। जनता को कुछ फौरी राहतें दे दी जाती हैं, ताकि वह शान्त हो जाये। और इस प्रकार पूँजीवादी व्यवस्था सुरक्षित रहती है और जनता के साथ कुछ समझौते कर, उसके सामने कुछ टुकड़े फेंककर लोगों के गुस्से और असन्तोष पर ठण्डे पानी का छिड़काव कर देती है। नेपाल, बंगलादेश, श्रीलंका में यही हुआ है।

जनता के गुस्से का स्वत:स्फूर्त रूप से फूटना कितना भी हिंस्र और भयंकर हो, उसका स्वत:स्फूर्त विद्रोह कितना भी जुझारू हो, वह अपने आप में पूँजीवादी व्यवस्था को पलटकर कोई आमूलगामी बदलाव नहीं ला सकता है। वजह यह है कि ऐसे विद्रोह के पास कोई विकल्प नहीं होता है, कोई स्पष्ट राजनीतिक कार्यक्रम और नेतृत्व नहीं होता है। वह पूँजीवादी व्यवस्था के कुछ लक्षणों का निषेध करता है, लेकिन वह समूची पूँजीवादी व्यवस्था को कठघरे में नहीं खड़ा करता और न ही उसका कोई व्यावहारिक विकल्प पेश कर पाता है। क्या नहीं चाहिए, यह उसे कुछ लक्षणों के रूप में समझ आता है, लेकिन क्या चाहिए इसका कोई एक सुव्यवस्थित विचार उसके पास नहीं होता है।

निश्चित तौर पर, यह एक सकारात्मक बात है कि पिछले डेढ़ दशकों के दौरान जनता के बीच छायी शान्ति, शिथिलता और निष्क्रियता समाप्त हुई है। दुनिया के तमाम हिस्सों में जनता की बग़ावतों ने दिखला दिया है कि 1990 में सोवियत यूनियन में सामाजिक-साम्राज्यवाद और संशोधनवाद के पतन के बाद से जो निराशा और पस्तहिम्मती छायी हुई थी, उसकी मोटी सतह में आज दीर्घकालिक मन्दी और इक्कीसवीं सदी की पहली महामन्दी के दौरान दरारें पड़ने लगी हैं। लेकिन जनता के स्वत:स्फूर्त आन्दोलनों में जबतक क्रान्तिकारी विचारधारा, क्रान्तिकारी राजनीति, क्रान्तिकारी राजनीतिक लाइन और इनके वाहक के तौर पर क्रान्तिकारी संगठन का प्रवेश नहीं होता तो ज़्यादा से ज़्यादा वे शासन-परिवर्तन ही कर सकते हैं, व्यवस्था-परिवर्तन नहीं। कुल मिलाकर, जनता के जीवन में कोई बुनियादी बदलाव नहीं आता है। बस कुछ तात्कालिक राहतें ही हासिल हो सकती हैं, चाहे वे आर्थिक अधिकारों व सुधारों के रूप में हों या राजनीतिक अधिकारों व सुधारों के रूप में।

जब दुनिया मौजूद उथल-पुथल से गुज़र रही है, तो यह समझना ज़रूरी हो जाता है कि **एक क्रान्तिकारी पार्टी का निर्माण आज का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है।** इसके बिना, परिवर्तन के लिए इतिहास द्वारा उपस्थित किये जा रहे अवसर बेकार चले जायेंगे। संकटग्रस्त पूँजीवाद के दौर में क्रान्तिकारी परिस्थितियाँ पैदा होती रहेंगी और कोई न कोई पूँजीवादी दल या नेता उसे बरबाद कर पूँजीवादी व्यवस्था के सीमान्तों की रक्षा करता रहेगा। अगर हम परिवर्तन की घड़ी को यूँ ही अपना गुस्सा निकालकर गुज़र जाने देते हैं, तो आम तौर पर हमारी सज़ा होती है फ़ासीवादी व अन्य प्रकार की धुर-दक्षिणपन्थी पूँजीवादी प्रतिक्रिया, जैसा कि अरब विश्व में कई देशों का उदाहरण दिखलाता है। ऐसे जनउभार हमें पूर्वसूचना देकर नहीं आते। वे अचानक आते हैं और सबसे समझदार क्रान्तिकारी पार्टी या नेताओं को भी अक्सर चौंका देते हैं। जब ये जनउभार होते हैं, उसी समय

(पेज 12 पर जारी)

पंजाब में प्रवासियों के ख़िलाफ़ भड़कायी जा रही नफ़रत से किसको होगा फ़ायदा ?

पंजाब की मेहनतकश जनता को प्रवासियों के खिलाफ़ भड़काने वालों से सावधान रहना होगा!

● इन्द्रजीत

पंजाब अभी बाढ़ की विभीषिका से गुजर ही रहा था कि यहाँ एक और मुद्दा भड़क उठा। यह मुद्दा पंजाब में रह रहे प्रवासियों से जुड़ा हुआ है। इस मसले ने राज्य के बाढ़ प्रभावित लोगों के गुस्से को न केवल ग़लत दिशा में मोड़ दिया बल्कि इससे क्षेत्रवाद की राजनीति करने वाले नफ़रती चिंटूओं को मेहनतकश जनता के बीच नफ़रत फैलाने का एक और मौका मिल गया। गत 9 सितम्बर को पंजाब के होशियारपुर ज़िले में एक पाँच वर्षीय बच्चे की दुष्कर्म के बाद हत्या कर दी गयी। पुलिस जाँच में इसका दोषी एक प्रवासी मज़दूर को पाया गया। यह खौफ़नाक घटना बेहद निन्दनीय है और इसमें दोषी व्यक्ति को कड़ी से कड़ी सजा मिलनी चाहिए। इस घटना के बाद होना तो यह चाहिए था कि इसके लिए क़ानून व्यवस्था से जवाबदेही ली जाती और देश में स्त्रियों और बच्चों के खिलाफ़ बढ़ रही यौन हिंसा की घटनाओं के पीछे के कारणों की तलाश की जाती। लेकिन जैसे ही यह घटना सामने आयी वैसे ही क्षेत्रवाद, प्रवासी-विरोध और पंजाबी पहचान के नाम पर अपनी राजनीतिक रोटियाँ सेंकने वाले लोग तुरन्त हरक़त में आ गये। दो दर्जन से ज़्यादा गाँवों के सरपंचों ने प्रवासियों के खिलाफ़ फ़रमान जारी कर दिये। क्षेत्रवाद और प्रवासी-विरोध की ओछी नफ़रती राजनीति करने वाले लोग पूरे जोश में भरकर दमगजे भरने लगे। दौ सौ ग्राम का माइक उठाकर दर-दर घूमने वाले सोशल मीडिया पत्रकारों को अपनी रीच बढ़ाने के लिए बैठे-बिठाये ही सनसनीखेज़ मसाला मिल गया। ऐसे फ़र्ज़ी पत्रकार और छुटभैये नेता वीडियो बना-बनाकर प्रवासी श्रमिकों के खिलाफ़ पंजाबियों के खून में उबाल लाने के प्रयास में जुट गये। यही नहीं इन्हें गरीब प्रवासी श्रमिकों के दस्तावेज़ जाँचने और उन्हें तंग करने का लाइसेंस भी मिल गया। विडम्बना देखिए कि खुद विदेशों में बैठे प्रवासी पंजाबी तक पंजाब से प्रवासियों को बाहर करने की अपीलें जारी करने लगे।

तर्क-विवेक और न्यायबोध को एक ओर रखकर एक प्रवासी मज़दूर के दोष का ठीकरा सभी प्रवासियों पर फोड़ा जाने लगा। देखते-देखते पंजाब में रहने वाले लाखों प्रवासी श्रमिकों में भय की लहर दौड़ गयी और उन्हें डर के साये में धकेल दिया गया। यह पूरा मामला दर्शाता है कि लोगों की निम्न राजनीतिक चेतना का फ़ायदा उठाकर उनका ध्यान उनके असली मुद्दों से भटकाना कितना आसान है।

पंजाब की भगवन्त मान सरकार प्रवासियों के खिलाफ़ बनाये जा रहे माहौल के मसले पर पहले तो कानों में रुई तेल डालकर सोती रही और बाद में औद्योगिक समूहों की ओर से दबाव आने पर इसने बयान भर जारी करके इतिश्री कर ली। औद्योगिक समूह इस बात से परेशान थे कि यदि प्रवासी श्रमिक चले जायेंगे तो फ़िर उन्हें ऐसे सस्ते मज़दूर कहाँ से मिलेंगे जिनकी श्रमशक्ति को सिक्कों में ढालकर ये अपनी तिजोरियाँ भरते हैं। लेकिन साथ ही उन्हें इसमें यह मौक़ा भी नज़र आ रहा था कि इस मसले के बहाने वे प्रवासी मज़दूरों को पंजाब में और भी ज़्यादा अनुशासित कर सिर झुका कर रहने को मजबूर भी कर सकते हैं। आम आदमी पार्टी की भगवन्त मान सरकार इतने दिन तक मुँह में दही जमाये इसलिए बैठी रही क्योंकि राज्य के बाढ़ से परेशान लोगों के सरकार के प्रति गुस्से को प्रवासियों के खिलाफ़ करके गलत दिशा में जो मोड़ा जा रहा था। यहाँ के चुटकुलेबाज़ मुख्यमन्त्री की तो हींग लगी न फिटकरी फ़िर भी रंग चोखा हो गया।

प्रवास एक ऐसी परिघटना है जोकि मानव की उत्पत्ति के समय से ही अस्तित्वमान है। जीवन के लिए बेहतर अवसरों की तलाश में इन्सानों का एक जगह से दूसरी जगह जाना एक आम बात है। स्वयं पंजाबी मूल के लोग ही लाखों की तादाद में कृषि, व्यापार, नौकरी, पर्यटन और उद्योग जैसी गतिविधियों में संलग्न होकर देश के अलग-अलग राज्यों में रहते हैं। बेहतर रोज़गार और जीवन में निश्चितता की तलाश में हर साल पंजाबी मूल के लाखों लोग कनाडा, अमेरिका, यूरोप और खाड़ी देशों में भी जाते हैं। 2016 से 2021 के बीच पाँच साल के दौरान ही पंजाब और चण्डीगढ़ से 9 लाख 84 हज़ार की संख्या में युवा और श्रमिक 'स्टडी वीजा' और 'वर्क वीजा' पर विदेश में गये हैं। पंजाब के अलग-अलग इलाक़ों में किये गये 2022 के एक सैम्पल सर्वे के अनुसार 2,597 घरों में से 2,788 लोग काम की तलाश में विदेशों में गये हैं। यही नहीं इनमें से 353 तो पूरे के पूरे परिवार ही पलायन कर गये। जीवन के लिए अधिक उपयुक्त हालात की तलाश में पंजाबियों का पलायन करना जितना स्वाभाविक है देश के पिछड़े और गरीब राज्यों से श्रमिकों का पंजाब की ओर पलायन भी उतना ही स्वाभाविक है। ग़ौरतलब है कि कई पश्चिमी देशों में पंजाबी प्रवासियों के साथ गोरे नस्लवादी और प्रवासी-विरोधी अक्सर उसी प्रकार का अमानवीय बर्ताव करते हैं और उन्हें देश से बाहर करने की बातें करते हैं।

बिहार, यूपी, एमपी, बंगाल और उड़ीसा से पंजाब में पलायन मुख्य तौर पर तथाकथित हरित क्रान्ति के दौरान शुरू हुआ और उसके बाद कालान्तर में पंजाब में औद्योगिक केन्द्रों के द्रुत विकास के साथ एक बड़ी आबादी यहाँ के उद्योगों में भी खटने लगी। पंजाब की स्थानीय श्रमिक आबादी यहाँ की कृषि और उद्योग की श्रमबल सम्बन्धी जरूरतों को पूरा ही नहीं कर सकती है। दूसरी बात यह है कि यह आबादी मज़दूरी की उस दर पर काम करने को तैयार ही नहीं होती जिस दर पर प्रवासी मज़दूरों से काम करवाया जा सकता है। दलित पंजाबी मज़दूरों का मसला इसमें अपवाद है और खेती में दलित पंजाबी मज़दूरों की एक विचारणीय आबादी आज भी काम करती है और बड़े फार्मरों व कुलकों के हाथों भयंकर शोषण और दमन झेलती है।

ग़ौरतलब है कि प्रवासी-विरोधी हालिया घटनाक्रम के दौरान पंजाब के लुधियाना बेल्ट के औद्योगिक पूँजीपतियों ने मान सरकार को इस मामले में हस्तक्षेप करने के लिए कैसे मजबूर किया। इसका कारण यही है कि अकेले लुधियाना के उद्योग-धन्धों में ही क़रीब 8 लाख प्रवासी श्रमिक कार्यरत हैं। पूँजीपति इस बात को अच्छी तरह से जानते हैं कि पलायन के लिए मजबूर करने पर मज़दूर तो कहीं भी काम कर लेंगे लेकिन मालिकों का मुनाफ़े का चक्का तब तक जाम रहेगा जब तक नये श्रमिकों को प्रशिक्षित करके काम पर नहीं रख लिया जाता। यही नहीं कृषि कार्यों के लिए और फ़सल की बुआई और कटाई के सीज़न में पंजाब के किसान यूपी-बिहार के श्रमिकों को लाने-ले जाने के लिए बसों तक की व्यवस्था करते हैं और ट्रैक्टर-ट्रॉली जोड़कर रेलवे स्टेशनों तक की ख़ाक छानते घूमते आम ही दिख जाते हैं। ज़्यादा दिन नहीं हुए जब लक्खा सिधाना नामक प्रवासी विरोधी छुटभैया "नेता" खुद प्रवासियों से अपने यहाँ काम कराता हुआ पाया गया था।

पंजाब में कुल श्रमबल का तक़रीबन 70 प्रतिशत प्रवासी मजदूरों से आता है। एक हालिया अनुमान के अनुसार पंजाब में विभिन्न कामों में लगने हेतु 42 लाख के क़रीब प्रवासी श्रमिक आते हैं। इनमें से तक़रीबन आधे तो उद्योग और कृषि क्षेत्र में यहीं टिककर काम कर रहे हैं तथा क़रीब आधे कृषि कार्यों में लगने के लिए फ़सल की बुआई और कटाई के समय मौसमी तौर पर आते हैं। अरक्षित, बाहरी और अलगाव का शिकार होने के चलते प्रवासी श्रमिक कम वेतन पर ही रूखी-सूखी खाकर और जैसे-तैसे रहकर भी सबसे मुश्किल हालात में और कठिन से कठिन काम को करने के लिए आसानी से तैयार हो जाते हैं। यह ठीक वैसे ही है जैसे यूरोप व खाड़ी के देशों और कनाडा-अमरीका-ऑस्ट्रेलिया में प्रवासी भारतीय श्रमिक अपेक्षाकृत कम पारिश्रमिक पर भी मुश्किल काम करने को भी तैयार हो जाते हैं। पंजाबी लोगों का पंजाब से बाहर या यूपी-बिहार के श्रमिकों का पंजाब में होने वाले पलायन के पीछे का असली कारण सरकारों की जन-विरोधी नीतियाँ होती हैं। यदि सरकारें लोगों को उनके घर के आसपास ही रोज़गार उपलब्ध करा दें तो लोगों को परदेस में जाकर खाक छानने की ज़रूरत ही क्यों पड़ेगी। पूँजीवादी व्यवस्था जनित असमान विकास लोगों को अपनी जगह-ज़मीन से उजड़कर दर-दर की ठोकरें खाने को मजबूर करता है। बेरोज़गारी पैदा करना मौजूदा मुनाफ़ा केन्द्रित व्यवस्था के स्वभाव में ही निहित होता है।

'भैये भगाओ – पंजाब बचाओ' का नस्लवादी और प्रतिक्रियावादी नारा देने वाले लोगों को पंजाब की जनता की असल समस्याओं से कुछ भी लेना-देना नहीं है। होशियारपुर की वीभत्स घटना से बहुत पहले से ही इनकी प्रवासी विरोधी मुहिम लगातार जारी है। बस ये गिद्ध की भाँति ऐसे मौक़ों की तलाश में रहते हैं जब कोई ऐसा नया मामला सामने आये और इन्हें स्थानीय आबादी को प्रवासियों के खिलाफ़ भड़काने का एक और मौक़ा मिले। कोई भी न्यायप्रिय व्यक्ति इस बात को बिल्कुल भी स्वीकार नहीं कर सकता कि किसी एक व्यक्ति के कुकर्म की सजा उसके पूरे समुदाय को दी जाये। परन्तु क्षेत्रवाद या ऐसी किसी भी क़िस्म की पहचान की राजनीति कुछ मायनों में फ़ासीवादी राजनीति की तरह ही काम करती है। अफ़वाहों और मिथकों को ये षड्यन्त्रकारी ढंग से यथार्थ बनाकर पेश करते हैं। पंजाब के इन स्वयंभू रक्षकों के अनुसार यहाँ की सभी समस्याओं का एकमात्र निदान प्रवासियों को पंजाब से भगाने भर से ही निकल जायेगा। यदि इन्हीं की तरह ही देश-विदेश के अलग-अलग हिस्सों में रहने वाले पंजाबियों के प्रति वहाँ की स्थानीय आबादी भी सोचने लग जाये तो ये कहाँ मुँह छुपाते फिरेंगे? ऐसे लोग अपनी वर्गीय सीमा के चलते न तो समाज विज्ञान को समझने का प्रयास करते हैं और न ही अर्थशास्त्र को ही। पूँजीवादी व्यवस्था और सरकारों की जनविरोधी नीतियों की मार झेलने वाली आम जनता का एक हिस्सा भी अपनी निम्न राजनीतिक चेतना के चलते ऐसे प्रतिक्रियावादी जुमलों का शिकार हो जाता है और अपने ही वर्ग-भाइयों की जान का दुश्मन बन बैठता है।

पंजाब की जनता की समस्याओं के लिए प्रवासी मज़दूर कत्तई ज़िम्मेदार नहीं हैं। कोई एक प्रवासी मज़दूर ऐसे किसी अपराध में पाया जा सकता है, तो उसी प्रकार स्वयं प्रवासी मज़दूरों के ऊपर भी तमाम जुल्म और अपराध होते रहते हैं, जो स्वयं मालिकों के वर्ग द्वारा किये जाते हैं। यह भी याद रखना होगा कि मज़दूरों की आबादी के एक हिस्से को पूँजीवादी व्यवस्था लगातार इंसानियत की शर्तों से महरूम करती रहती है, जिसके कारण उसका विमानवीकरण हो जाता है और वह लम्पट सर्वहारा का अंग बन अक्सर आपराधिक प्रवृत्तियों का शिकार हो जाता है। दूसरी ओर, प्राचुर्य, आधिक्य और ऐय्याशी के नशे में चूर बड़े फार्मर, रियल एस्टेट मालिक, कारखाना मालिक, आदि भी आपराधिक कार्रवाइयों में संलग्न होते हैं। पंजाब के धनिक वर्ग के एक हिस्से में और प्रवासी मज़दूरों व आम तौर पर मज़दूरों की आबादी के एक हिस्से, विशेष तौर पर लम्पटीकृत मज़दूर वर्ग के एक हिस्से में आपराधिक प्रवृत्ति पैदा होने के अलग-अलग कारण हैं, लेकिन दोनों के लिए ही पूँजीवादी व्यवस्था ज़िम्मेदार है। साथ ही, पंजाबी और प्रवासी दोनों प्रकार की ही मेहनतकश जनता की तमाम समस्याओं के लिए पूँजीपतियों की सेवा में लगी जनविरोधी सरकारें और मुनाफ़ा केन्द्रित मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था ज़िम्मेदार हैं। ऐसी घटनाओं के किसी एक व्यक्ति द्वारा किये गये जघन्य अपराध के आधार पर समूचे वर्ग या समुदाय को दोषी ठहरा देने की सोच ही टुटपुँजिया प्रतिक्रिया से पैदा होती है। आज पंजाब में कुछ लोगों में यही टुटपुँजिया प्रतिक्रिया देखी जा सकती है।

हमारी भलाई इसी में है कि हम अपने एक जैसे हालात को समझें और इन्हें बदलने के लिए एकजुट और संगठित होकर साझे तौर पर संघर्ष करें। इस समाज में आज दो ही प्रमुख वर्ग हैं एक लुटेरे और दूसरे कमेरे। मालिक वर्ग चाहे प्रवासी मज़दूर हों या पंजाबी मज़दूर हों, उनके शरीर से खून का आखिरी कतरा निचोड़कर सिक्कों में ढालने का कोई मौक़ा नहीं छोड़ते और वहीं दूसरी ओर अपने प्रवासीद्वेष के चलते प्रवासी मज़दूरों को निशाना बनाने का कोई मौक़ा भी नहीं छोड़ते क्योंकि इसके ज़रिये वे प्रवासी मज़दूरों को और भी ज़्यादा अरक्षित स्थिति में पहुँचा सकते हैं, उनके शोषण की दरों को बढ़ा सकते हैं और उनके दमन को और भयंकर बना सकते हैं। क्षेत्रवादी और पहचान की प्रतिक्रियावादी राजनीति करने वाले लोग मुनाफ़ाकेन्द्रित व्यवस्था के असली अन्तर्विरोधों को हमसे छुपा देते हैं और सरकार व व्यवस्था के खिलाफ़ पनपने वाले हमारे गुस्से को ये हमारे ही जैसे लोगों की ओर मोड़ने का काम करते हैं। पंजाब में प्रवासियों के खिलाफ़ भड़कायी जा रही नफ़रत से सिर्फ़ और सिर्फ़ मानवद्रोही पूँजीवादी व्यवस्था को ही फ़ायदा पहुँचता है और इससे मेहनतकश जनता को केवल और केवल नुकसान ही उठाना पड़ता है। क्षेत्रवाद की प्रतिक्रियावादी राजनीति जनता की एकजुटता को तोड़ती है और मज़दूर वर्ग के हितों को गहरा नुकसान पहुँचाती है। जाति-धर्म-भाषा-क्षेत्र जैसी किसी भी पहचान के आधार पर जनता की एकता में पलीता लगाने वाले लोगों से हमें सदैव सतर्क रहना चाहिए और ऐसे लोगों को अपने बीच से तत्काल खदेड़ बाहर करना चाहिए।

फिर उजागर हुआ भारत के सामाजिक-जनवादियों और संशोधनवादियों का जन-विरोधी और दोगला चरित्र !

फ़िलिस्तीन के समर्थन में हो रहे प्रदर्शनों पर केरल सीपीएम सरकार का दमन बदस्तूर जारी !

● अदिति

बीते 6 सितम्बर को केरल के कन्नूर ज़िले में फ़िलिस्तीन के समर्थन में आयोजित प्रदर्शन को लेकर गर्ल्स इस्लामिक ऑर्गनाइज़ेशन (जी. आई.ओ) के ख़िलाफ़ पझायंगडी पुलिस स्टेशन में एफ़.आई.आर दर्ज की गयी। *सुओ मोटो* एफ़.आई.आर के तहत केरल पुलिस ने जी.आई.ओ के राज्य महासचिव, अफ़रा शिहाब और संगठन के 30 अन्य सदस्यों पर समाज में अशान्ति फैलाने का आरोप लगाया है। इन सब पर बी.एन.एस की धारा 189(2) (ग़ैर-क़ानूनी सभा करना), 191(2) (जनसमूह द्वारा बल और हिंसा का प्रयोग करना) और 192 (दंगा भड़काने के इरादे से जानबूझकर उकसाना) आदि धाराएँ लगायी गयी हैं। ग़ौरतलब है कि फ़िलिस्तीन के समर्थन में होने वाले कार्यक्रमों को रोकने के लिए सत्तारूढ़ मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीएम) द्वारा यह क़दम उठाया गया है।

इस पूरे मामले ने एक बार फिर सामाजिक-जनवादी व संशोधनवादी नामधारी कम्युनिस्ट पार्टी सीपीएम के जनविरोधी चरित्र और दोमुँहेपन को उजागर कर दिया है। इससे पहले भी केरल में फ़िलिस्तीन के समर्थन में होने वाले प्रदर्शनों पर रोक लगाने या प्रदर्शनकारियों पर बलप्रयोग करने से लेकर झूठे आरोप लगाने जैसे कुकर्म भी इस सामाजिक-जनवादी पार्टी द्वारा किया जाता रहा है।

लेकिन इनकी बेशर्मी और दोमुँहापन यहीं ख़त्म नहीं होता। अपना बचा-खुचा सामाजिक आधार और रही-सही राजनीतिक साख बचाने के लिए यही सीपीएम फ़िलिस्तीन के समर्थन का ढोंग करती है और अपनी पार्टी के सम्मेलन में फ़िलिस्तीन के समर्थन में प्रस्ताव भी पारित करती है! यही नहीं, बीच-बीच में कुछ रस्मी प्रदर्शन भी आयोजित करती है! केरल के मुख्यमन्त्री पिनाराई विजयन ख़ुद भी कई बार विभिन्न मंचों से फ़िलिस्तीन का समर्थन करते नज़र आयें हैं। पर दूसरी तरफ़ यही सीपीएम अपने शासित राज्य में फ़िलिस्तीन के समर्थन में हो रहे प्रदर्शनों का दमन कर रही है। "जनवाद" के मुखौटे के पीछे यही इनकी असल सच्चाई है।

यह अपने आप में कोई पहली घटना नहीं है, समय-समय पर सीपीएम के चेहरे से "जनवाद" का मुखौटा उतरता रहा है। उदाहरण के लिए, बीते 13 सितम्बर को केरल के कोच्चि में पत्रकारों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और वक़ीलों ने महाराष्ट्र एटीएस द्वारा गिरफ़्तार पत्रकार रेज़ाज एम. शीबा सिद्दीक़ी की रिहाई की माँग करते हुए और पत्रकारों पर बढ़ती दमनात्मक कार्रवाई व गिरफ़्तारियों के ख़िलाफ़ एक कार्यक्रम आयोजित किया। कार्यक्रम के तुरन्त बाद ही केरल पुलिस ने वही क़दम उठाये, जिसके ख़िलाफ़ कार्यक्रम किया जा रहा था! पुलिस ने कार्यक्रम के आयोजकों और वक्ताओं के ख़िलाफ़ मामला दर्ज कर लिया। यह दर्शाता है कि सीपीएम जैसी संसोधनवादी पार्टी अपने पतन की पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी है। उनका जनवाद या प्रगतिशीलता से दूर-दूर तक कोई वास्ता नहीं है।

देश के अन्य राज्यों में सीपीएम और उसके छात्र संगठन व ट्रेड यूनियन चना जोर गरम बाते करते हैं, पर केरल में आते ही इनकी आँखों पर गाँधारी वाली पट्टी बन्ध जाती है। केरल में सीपीएम ने भी अन्य चुनावबाज़ पार्टियों की तरह ही उदारीकरण-निजीकरण की जन-विरोधी नीतियों को धड़ल्ले से लागू किया है और लम्बे समय से सत्ता की मलाई चाट रही है। साथ ही "प्रगतिशीलता का चोला" ओढ़कर इन्होनें आम जनता में भी भ्रम बना कर रखा था, जो अब टूटता जा रहा है। सत्ता बचाने की ख़ातिर अब इनके मुख्यमन्त्री खुलकर खुशी-खुशी मोदी और अडाणी के साथ मंच साझा करते हैं। बीते 2 मई को नरेन्द्र मोदी ने केरल के तिरुवनन्तपुरम में विझिनजाम अन्तर्राष्ट्रीय बन्दरगाह का उद्घाटन किया। इसी कार्यक्रम में केरल के मुख्यमन्त्री पिनाराई विजयन, अडानी समूह के अध्यक्ष गौतम अडाणी के साथ मौजूद थे। बता दें कि इसी विझिनजाम अन्तरराष्ट्रीय बन्दरगाह परियोजना के ख़िलाफ़ 2022 में सीपीएम और भाजपा ने मिलकर प्रदर्शन भी किया था। इसमें सीपीएम के ज़िला सचिव अनवूर नागप्पन और भाजपा ज़िलाध्यक्ष वी.वी राजेश ने एक साथ भागीदारी की थी। फ़ासीवाद और सामाजिक-फ़ासीवाद की गलबहियाँ देखते ही बन रही थी!

भाजपा के साथ सीपीएम को "रणकौशलात्मक एकता" बनाने में इसलिए भी समस्या नहीं है क्योंकि सीपीएम के अनुसार भाजपा कोई फ़ासीवादी पार्टी नहीं है। बीते फ़रवरी में सीपीएम ने एक ड्राफ़्टनोट जारी किया, जिसमें लिखा था- "हम ये नहीं कह रहे हैं कि मोदी सरकार फ़ासिस्ट या नियो-फ़ासिस्ट सरकार है। न ही हम भारत को 'नियो-फ़ासिस्ट' स्टेट के रूप में परिभाषित कर रहे हैं। हम इस बात पर ज़ोर दे रहे हैं कि आरएसएस की राजनीतिक शाखा भाजपा के 10 सालों के लगातार शासन के बाद, भाजपा-संघ ने सरकार और नीतियों पर अपना कण्ट्रोल स्थापित कर लिया है। इसके कारण 'नियो-फ़ासिस्ट गुण' दिखे हैं।" इससे समझा ही जा सकता है कि सीपीएम पूरी तरह पूँजीपतियों की गोद में जा बैठने के बाद अब और तत्परता के साथ पूँजीवादी व्यवस्था की दूसरी सुरक्षा पँक्ति की भूमिका निभा रही है।

संसद और विधानसभा के में बैठने वाली, राज्यों में सरकार बनाने वाली और केन्द्र सरकार में शामिल होने वाली और केवल इसी रास्ते से "क्रान्ति" को अंजाम देने वाली सीपीआई-सीपीएम जैसी सामाजिक-जनवादी पार्टियाँ पूँजीवादी नीतियों के विरोधी हो ही नहीं सकते हैं और न ही जनता के किसी भी वास्तविक लड़ाई से कोई लेना-देना ही है। इनका तो मज़दूर वर्ग और आम जनता से गद्दारी का काफ़ी पुराना इतिहास रहा है। ज्ञात हो कि नक्सलबाड़ी के समय बंगाल सरकार के उप-मुख्यमन्त्री रहे ज्योति बसु ने खेतिहर मज़दूरों और चाय-बागान मज़दूरों पर गोलियाँ चलवायीं थी और उनके विरोध और हक़ की लड़ाई का क्रूर दमन किया था। नन्दीग्राम-सिंगूर संघर्षों के दौरान बुद्धदेव भट्टाचार्य ने नन्दीग्राम में इण्डोनेशियाई कम्पनी सलेम की यूनिट और सिंगूर में टाटा नैनों के कारख़ाने लगवाने के लिए किसानों से जबरन ज़मीन हथियाने की कोशिश की और प्रतिरोध कर रहे ग़रीब किसानों पर गोलियाँ चलवायी। सलेम वही इण्डोनेशियाई कम्पनी है, जिसने सुहार्तो की तानाशाही के दौरान इण्डोनेशियाई कम्युनिस्ट पार्टी के क़त्लेआम में सुहार्तो की मदद की थी। यह है इनके लाल मुखौटे के पीछे छुपा असली चेहरा और इसलिए ये चाहे जितना भी लाल झण्ड़ा क्यों न लहरा लें और हँसिया-हथौड़ा की क़समें खा लें ये रंगे सियार बार-बार अपने आप को बेनक़ाब करते रहे हैं।

मज़दूर वर्ग के शिक्षक लेनिन के अनुसार, संशोधनवाद का मतलब होता है मार्क्सवादी खोल में पूँजीवादी अन्तर्वस्तु। संशोधनवादी, किसी न किसी रूप में, कभी खुले तौर पर तो कभी भ्रामक शब्दजाल रचते हुए, वर्ग-संघर्ष के बुनियादी ऐतिहासिक नियम को ख़ारिज करते हुए वर्ग-सहयोग की वक़ालत करते हैं, बल-प्रयोग और राज्यसत्ता के ध्वंस की ऐतिहासिक शिक्षा को नकारते हैं और क्रान्ति के बजाय शान्तिपूर्ण संक्रमण की वक़ालत करते हैं, या फिर क्रान्ति शब्द को शान्तिपूर्ण संक्रमण का पर्याय बना देते हैं। संशोधनवादी इस सच्चाई को नकार देते हैं कि इतिहास में कभी भी शोषक-शासक वर्गों ने अपनी मर्ज़ी से सत्ता त्यागकर ख़ुद अपनी क़ब्र नहीं खोदी है और कभी भी उनका हृदय-परिवर्तन नहीं हुआ है। संशोधनवादी मज़दूर आन्दोलन में बुर्जुआ वर्ग के एजेण्ट का काम करते हैं। सीपीएम, सीपीआई, सीपीआई (एम.एल) लिबरेशन जैसी संशोधनवादी पार्टियाँ पूँजीवादी व्यवस्था की दूसरी सुरक्षा पँक्ति का काम करती हैं। आज के दौर में तो इनका ''समाजवाद'' और भी अधिक घिनौना हो चुका है।

केरल में फ़िलिस्तीन के समर्थन में हो रहे कार्यक्रमों के दमन ने एक बार फ़िर से सीपीएम की ग़द्दारी को बेपर्द करने का ही काम किया है। इसलिए आज मज़दूर वर्ग को यह बात गाँठ बाँध लेनी चाहिए कि सभी प्रकार के संशोधनवादी और सामाजिक-जनवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन के विभीषण, जयचन्द और मीर जाफ़र होते हैं। इसलिए आज देश की आम जनता के सामने इन विभीषणों, जयचन्दों और मीर जाफ़रों की सच्चाई उजागर करना भी बेहद ज़रूरी कार्यभार बनता है।

क्या स्वत:स्फूर्त विद्रोह पर्याप्त है?

(पेज 10 से आगे)

हम अचानक क्रान्तिकारी पार्टी और विकल्प का निर्माण नहीं कर सकते हैं। **क्रान्तिकारी पार्टी सर्वहारा वर्ग के वर्ग संघर्ष, उसकी रणनीति व आम रणकौशल के निर्माण व कार्यान्वयन का मुख्यालय होती** है। इसका निर्माण क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग को सतत् जारी रखना होता है और उसे तैयार करते रहना होता है। हमारे देश में भी स्थितियाँ भविष्य में विस्फोटक दिशा में जा सकती हैं। यहाँ के पूँजीवाद और पूँजीवादी राज्यसत्ता की जड़ें नेपाल, बंगलादेश या श्रीलंका के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा गहरी हैं। यहाँ पूँजीवादी विचारधारा का जनता के बीच प्रभाव भी अपेक्षाकृत ज़्यादा है। इसलिए यहाँ पर ऐसी स्थितियाँ तत्काल पैदा हो जायेंगी, इसकी गुंजाइश कम है। लेकिन हमें इतिहास का यह नियम याद रखना चाहिए कि पूँजीवादी व्यवस्था में श्रम और पूँजी तथा सर्वहारा वर्ग और बुर्जुआ वर्ग का अन्तरविरोध पूँजीवादी व्यवस्था की आर्थिक व राजनीतिक गति के कारण लगातार गहराता रहता है। चाहे पूँजीवादी व्यवस्था, पूँजीवादी शासक वर्ग व उसकी राज्यसत्ता तथा उसकी विचारधारा का वर्चस्व व प्रभाव कितना ही गहरा और सुदृढ़ क्यों न हो, पूँजी की नैसर्गिक गति श्रम और पूँजी के अन्तरविरोध को बार-बार ऐसे असम्भाव्यता के बिन्दुओं पर पहुँचाती रहती है, जहाँ इस वर्चस्व के ढाँचे में दरारें आने लगती हैं और पूँजीपति वर्ग और उसकी राज्यसत्ता के लिए जनता के जुझारू जनान्दोलनों और विद्रोहों को रोक पाना असम्भव हो जाता है। ऐसी स्थितियाँ भारत में भी पैदा होंगी और इतिहास में पैदा हुई भी हैं। यह इतिहास का नियम है। ऐसे में, आज यह समझना हमारे लिए सबसे अनिवार्य हो जाता है कि हमारे देश में क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग को अपनी क्रान्तिकारी पार्टी का निर्माण करना ही होगा जो ग़रीब मेहनतकश किसानों, मध्यवर्ग और समूची आम मेहनतकश आबादी को एक क्रान्तिकारी समाजवादी कार्यक्रम पर साथ ले सके, एक क्रान्तिकारी जनान्दोलन खड़ा कर सके और पूँजीपति वर्ग की राज्यसत्ता को उखाड़ फेंके।

हमारे पड़ोसी देशों और दुनिया के कई देशों में जारी घटनाक्रम ने एक ओर आशा का संचार किया है और दूसरी ओर यह चिन्ता भी पैदा की है कि एक क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के निर्माण के कार्य को बिना रुके, बिना थके लगातार जारी रखा जाय ताकि हमारे देश में भी परिवर्तन की घड़ी यूँ ही न बीत जाये, किसी शासन-परिवर्तन मात्र में न समाप्त हो जाये, बल्कि एक व्यवस्थागत परिवर्तन की ओ जाये। हम मज़दूरों-मेहनतकशों को आज से ही इस कार्यभार को पूरा करने के लिए अपने आपको राजनीतिक तौर पर तैयार करने की मुहिम में लग जाना होगा।

पाठकों से

कुछ अपरिहार्य कारणों से इस बार हम 'क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षण माला' की किस्त नहीं दे पा रहे हैं। यह किस्त 'मज़दूर बिगुल' के अक्टूबर अंक में प्रकाशित होगी। – सं.

भगतसिंह के जन्मदिवस (28 सितम्बर) के मौक़े पर

क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा

भगतसिंह द्वारा तैयार किये गये क्रान्तिकारी कार्यक्रम की योजना के दो हिस्से हैं। एक, छापकर बाँटने के लिए जो एक पत्र की तरह लिखा गया है और दूसरा, एक लेख के रूप में क्रान्तिकारी साथियों में विचार, बहस व काम में दिग्दर्शन के लिए है। इसका पहला हिस्सा 'नौजवान राजनीतिक कार्यकर्ताओं के नाम' शीर्षक से उस समय के विभिन्न समाचारपत्रों में काट-छाँटकर छपा था। भगतसिह को फाँसी के बाद लाहौर के 'द पीपुल' में 29 जुलाई, 1931 और इलाहाबाद के 'अभ्युदय' में 8 मई, 1931 के अंक में इसके कुछ अंश प्रकाशित हुए थे। यह दस्तावेज़ अपने समग्र रूप में कुछ वर्ष पहले अंग्रेज़ सरकार की एक गुप्त पुस्तक में मिला। यह पुस्तक सी.आई.डी. अधिकारी सी.ई.एस. फेयरवेदर ने 1936 में 'बंगाल में संयुक्त मोर्चा-आन्दोलन की प्रगति पर नोट' शीर्षक से लिखी थी। उसके अनुसार यह मसविदा भगतसिह ने लिखा था और 3 अक्टूबर, 1931 को श्रीमती विमला प्रभा देवी के घर से तलाशी में हासिल हुआ था। इस पुलिस अधिकारी ने यह कहा था कि अब सभी क्रान्तिकारी शक्तियाँ इस कार्यक्रम में उल्लिखित सुझावों के अनुसार काम कर रही हैं। इस बेहद महत्वपूर्ण दस्तावेज़ के कुछ अंश हम यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं। यह पूरा दस्तावेज़ आगे दिये लिंक से पढ़ा जा सकता है, और समाज में बदलाव की इच्छा रखने वाले हर व्यक्ति को इसे ज़रूर पढ़ना चाहिए: http://naubhas.com/archives/535

...मैंने कहा है कि वर्तमान आन्दोलन किसी न किसी समझौते या पूर्ण असफलता में समाप्त होगा।

मैंने यह इसलिए कहा है क्योंकि मेरी राय में इस समय वास्तविक क्रान्तिकारी ताक़तें मैदान में नहीं हैं। यह संघर्ष मध्यवर्गीय दुकानदारों और चन्द पूँजीपतियों के बलबूते किया जा रहा है। यह दोनों वर्ग, विशेषतः पूँजीपति, अपनी सम्पत्ति या मिल्क़ियत ख़तरे में डालने की ज़ुर्रत नहीं कर सकते। वास्तविक क्रान्तिकारी सेनाएँ तो गाँवों और कारख़ानों में हैं — किसान और मज़दूर। लेकिन हमारे 'बुर्जुआ' नेताओं में उन्हें साथ लेने की हिम्मत नहीं है, न ही वे ऐसी हिम्मत कर सकते हैं। यह सोये हुए सिंह यदि एक बार गहरी नींद से जग गये तो वे हमारे नेताओं की लक्ष्य-पूर्ति के बाद भी रुकने वाले नहीं हैं। 1920 में अहमदाबाद के मज़दूरों के साथ अपने प्रथम अनुभव के बाद महात्मा गाँधी ने कहा था, ''हमें मज़दूरों के साथ साँठ-गाँठ नहीं करना चाहिए। कारख़ानों के सर्वहारा वर्ग का राजनीतिक हितों के लिए इस्तेमाल करना ख़तरनाक है।'' (मई, 1921 के 'दि टाइम्स') से। तब से उन्होंने इस वर्ग को साथ लेने का कष्ट नहीं उठाया। यही हाल किसानों के साथ है। 1922 का बारदोली-सत्याग्रह पूरी तरह यह स्पष्ट करता है कि नेताओं ने जब किसान वर्ग के उस विद्रोह को देखा, जिसे न सिर्फ़ विदेशी राष्ट्र के प्रभुत्व से ही मुक्ति हासिल करनी थी वरन देशी ज़मींदारों की ज़ंजीरें भी तोड़ देनी थीं, तो कितना ख़तरा महसूस किया था।

यही कारण है कि हमारे नेता किसानों के आगे झुकने की जगह अंग्रेज़ों के आगे घुटने टेकना पसन्द करते हैं। पण्डित जवाहर लाल को छोड़ दें तो क्या आप किसी नेता का नाम ले सकते हैं, जिसने मज़दूरों या किसानों को संगठित करने की कोशिश की हो। नहीं, वे ख़तरा मोल नहीं लेंगे। यही तो उनमें कमी है, इसलिए मैं कहता हूँ कि वे सम्पूर्ण आज़ादी नहीं चाहते। आर्थिक और प्रशासकीय दबाव डालकर वे चन्द और सुधार, यानी भारतीय पूँजीपतियों के लिए चन्द और रियायतें हासिल करना चाहेंगे। इसीलिए मैं कहता हूँ कि इस आन्दोलन का बेड़ा तो डूबेगा ही — शायद किसी न किसी समझौते या ऐसी किसी चीज़ के बिना ही। नवयुवक कार्यकर्ता, जो पूरी तनदेही से 'इंक़लाब ज़िन्दाबाद' के नारे लगाते हैं, स्वयं पूरी तरह संगठित नहीं हैं और अपना आन्दोलन आगे ले जाने की ताक़त नहीं रखते हैं। वास्तव में पण्डित मोतीलाल नेहरू के सिवाय हमारे बड़े नेता कोई ज़िम्मेदारी नहीं लेना चाहते। यही कारण है कि वे हर बार गाँधी के आगे बिना शर्त घुटने टेक देते हैं। अलग राय होने पर भी वे पूरे ज़ोर से विरोध नहीं करते और गाँधी के कारण प्रस्ताव पास कर दिये जाते हैं। ऐसी परिस्थितियों में, क्रान्ति के प्रति पूरी संजीदगी रखने वाले नौवजान कार्यकर्ताओं को मैं चेतावनी देना चाहता हूँ कि कठिन समय आ रहा है, वे चौकस रहें, हिम्मत न हारें और उलझनों में न फँसे। 'महान गाँधी' के दो संघर्षों के अनुभवों के बाद हम आज की परिस्थिति व भविष्य के कार्यक्रम के बारे में स्पष्ट राय बना सकते हैं। अब मैं बिल्कुल सादे ढंग से यह केस बताता हूँ। आप 'इंक़लाब-ज़िन्दाबाद' का नारा लगाते हो। मैं यह मानकर चलता हूँ कि आप इसका मतलब समझते हो। असेम्बली बम केस में दी गयी हमारी परिभाषा के अनुसार इंक़लाब का अर्थ मौजूदा सामाजिक ढाँचे में पूर्ण परिवर्तन और समाजवाद की स्थापना है। इस लक्ष्य के लिए हमारा पहला क़दम ताक़त हासिल करना है। वास्तव में 'राज्य', यानी सरकारी मशीनरी, शासक वर्ग के हाथों में अपने हितों की रक्षा करने और उन्हें आगे बढ़ाने का यन्त्र ही है। हम इस यन्त्र को छीनकर अपने आदर्शों की पूर्ति के लिए इस्तेमाल करना चाहते हैं। हमारा आदर्श है — नये ढंग से सामाजिक संरचना, यानी मार्क्सवादी ढंग से। इसी लक्ष्य के लिए हम सरकारी मशीनरी का इस्तेमाल करना चाहते हैं। जनता को लगातार शिक्षा देते रहना है ताकि अपने

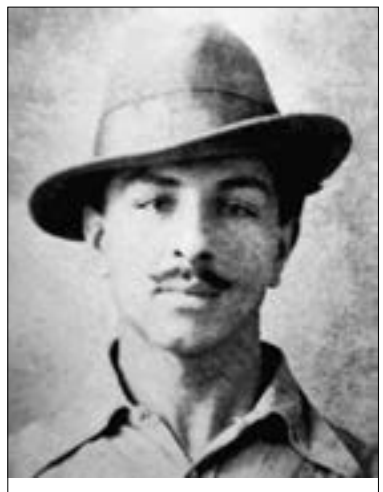

सामाजिक कार्यक्रम की पूर्ति के लिए अनुकूल व सुविधाजनक वातावरण बनाया जा सके। हम उन्हें संघर्षों के दौरान ही अच्छा प्रशिक्षण और शिक्षा दे सकते हैं।

इन बातों के बारे में स्पष्टता, यानी हमारे फ़ौरी और अन्तिम लक्ष्य को स्पष्टता से समझने के बाद हम आज की परिस्थिति का विश्लेषण कर सकते हैं। किसी भी स्थिति का विश्लेषण करते समय हमें हमेशा बिल्कुल बेझिझक, बेलाग या व्यावहारिक होना चाहिए।

... ...

वर्तमान परिस्थिति पर हम कुछ हद तक विचार कर चुके हैं, लक्ष्य-सम्बन्धी भी कुछ चर्चा हुई है। हम समाजवादी क्रान्ति चाहते हैं, जिसके लिए बुनियादी ज़रूरत राजनीतिक क्रान्ति की है। यही है जो हम चाहते हैं। राजनीतिक क्रान्ति का अर्थ राजसत्ता (यानी मोटे तौर पर ताक़त) का अंग्रेज़ी हाथों में से भारतीय हाथों में आना है और वह भी उन भारतीयों के हाथों में, जिनका अन्तिम लक्ष्य हमारे लक्ष्य से मिलता हो। और स्पष्टता से कहें तो — राजसत्ता का सामान्य जनता की कोशिश से क्रान्तिकारी पार्टी के हाथों में आना। इसके बाद पूरी संजीदगी से पूरे समाज को समाजवादी दिशा में ले जाने के लिए जुट जाना होगा। यदि क्रान्ति से आपका यह अर्थ नहीं है तो महाशय, मेहरबानी करें और 'इंक़लाब ज़िन्दाबाद' के नारे लगाने बन्द कर दें। कम से कम हमारे लिए 'क्रान्ति' शब्द में बहुत ऊँचे विचार निहित हैं और इसका प्रयोग बिना संजीदगी के नहीं करना चाहिए, नहीं तो इसका दुरुपयोग होगा। लेकिन यदि आप कहते हैं कि आप राष्ट्रीय क्रान्ति चाहते हैं जिसका लक्ष्य भारतीय गणतन्त्र की स्थापना है तो मेरा प्रश्न यह है कि उसके लिए आप, क्रान्ति में सहायक होने के लिए, किन शक्तियों पर निर्भर कर रहे हैं? क्रान्ति राष्ट्रीय हो या समाजवादी, जिन शक्तियों पर हम निर्भर हो सकते हैं — वे हैं किसान और मज़दूर। कांग्रेसी नेताओं में इन्हें संगठित करने की हिम्मत नहीं है, इस आन्दोलन में यह आपने स्पष्ट देख लिया है। किसी और से अधिक उन्हें इस बात का अहसास है कि इन शक्तियों के बिना वे विवश हैं। जब उन्होंने सम्पूर्ण आज़ादी का प्रस्ताव पास किया तो इसका अर्थ क्रान्ति ही था, पर इनका (कांग्रेस का) मतलब यह नहीं था। इसे नौजवान कार्यकर्ताओं के दबाव में पास किया गया था और इसका इस्तेमाल वे धमकी के रूप में करना चाहते थे, ताकि अपना मनचाहा डोमिनियन स्टेटस में हासिल कर सकें। आप कांग्रेस के पिछले तीनों अधिवेशनों के प्रस्ताव पढ़कर उस सम्बन्ध में ठीक राय बना सकते हैं। मेरा इशारा मद्रास, कलकत्ता व लाहौर अधिवेशनों की ओर है। कलकत्ता में डोमिनियन स्टेटस की माँग का प्रस्ताव पास किया गया। 12 महीने के भीतर इस माँग को स्वीकार करने के लिए कहा गया और यदि ऐसा न किया गया तो कांग्रेस मजबूर होकर पूर्ण आज़ादी को अपना उद्देश्य बना लेगी। पूरी संजीदगी से वे 31 दिसम्बर, 1929 की आधी रात तक इस तोहफ़े को प्राप्त करने का इन्तज़ार करते रहे और तब उन्होंने पूर्ण आज़ादी का प्रस्ताव मानने के लिए स्वयं को 'वचनबद्ध' पाया, जो कि वे चाहते नहीं थे। और तब भी महात्मा जी ने यह बात छिपाकर नहीं रखी कि बातचीत के दरवाज़े खुले हैं। यह था इसका वास्तविक आशय। बिल्कुल शुरू से ही वे जानते थे कि उनके आन्दोलन का अन्त किसी न किसी तरह के समझौते में होगा। इस बेदिली से हम नफ़रत करते हैं न कि संघर्ष के किसी मसले पर समझौते से।

हम इस बात पर विचार कर रहे थे कि क्रान्ति किन-किन ताक़तों पर निर्भर है? लेकिन यदि आप सोचते हैं कि किसानों और मज़दूरों को सक्रिय हिस्सेदारी के लिए आप मना लेंगे तो मैं बताना चाहता हूँ कि वे किसी प्रकार की भावुक बातों से बेवक़ूफ़ नहीं बनाये जा सकते। वे साफ़-साफ़ पूछेंगे कि उन्हें आपकी क्रान्ति से क्या लाभ होगा, वह क्रान्ति जिसके लिए आप उनके बलिदान की माँग कर रहे हैं। भारत सरकार का प्रमुख लार्ड रीडिंग की जगह यदि सर पुरुषोत्तम दास ठाकुर दास हो तो उन्हें (जनता को) इससे क्या फ़र्क़ पड़ता है? एक किसान को इससे क्या फ़र्क़ पड़ेगा, यदि लार्ड इरविन को जगह सर तेज बहादुर सप्रू आ जायें। राष्ट्रीय भावनाओं की अपील बिल्कुल बेकार हैं। उसे आप अपने काम के लिए 'इस्तेमाल' नहीं कर सकते। आपको गम्भीरता से काम लेना होगा और उन्हें समझाना होगा कि क्रान्ति उनके हित में है और उनकी अपनी है। सर्वहारा श्रमिक वर्ग की क्रान्ति, सर्वहारा के लिए।

जब आप अपने लक्ष्य के बारे में स्पष्ट अवधारणा बना लेंगे तो ऐसे उद्देश्य की पूर्ति के लिए आप अपनी शक्ति सँजोने में जुट जायेंगे। अब दो अलग-अलग पड़ावों से गुज़रना होगा — पहला तैयारी का पड़ाव, दूसरा उसे कार्यरूप देने का।

जब यह वर्तमान आन्दोलन ख़त्म होगा तो आप अनेक ईमानदार व गम्भीर क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं को निराश व उचाट पायेंगे। लेकिन आपको घबराने की ज़रूरत नहीं है। भावुकता एक ओर रखो। वास्तविकता का सामना करने के लिए तैयार होओ। क्रान्ति करना बहुत कठिन काम है। यह किसी एक आदमी की ताक़त के वश की बात नहीं है और न ही यह किसी निश्चित तारीख़ को आ सकती है। यह तो विशेष सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों से

(पेज 14 पर जारी)

क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा

(पेज 13 से आगे)

पैदा होती है और एक संगठित पार्टी को ऐसे अवसर को सँभालना होता है और जनता को इसके लिए तैयार करना होता है। क्रान्ति के दुस्साध्य कार्य के लिए सभी शक्तियों को संगठित करना होता है। इस सबके लिए क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं को अनेक कुर्बानियाँ देनी होती हैं। यहाँ मैं यह स्पष्ट कह दूँ कि यदि आप व्यापारी हैं या सुस्थिर दुनियादार या पारिवारिक व्यक्ति हैं तो महाशय! इस आग से न खेलें। एक नेता के रूप में आप पार्टी के किसी काम के नहीं हैं। पहले ही हमारे पास ऐसे बहुत से नेता हैं जो शाम के समय भाषण देने के लिए कुछ वक़्त ज़रूर निकाल लेते हैं। ये नेता हमारे किसी काम के नहीं हैं। हम तो लेनिन के अत्यन्त प्रिय शब्द 'पेशेवर क्रान्तिकारी' का प्रयोग करेंगे। पूरा समय देने वाले कार्यकर्ता, क्रान्ति के सिवाय जीवन में जिनकी और कोई ख्वाहिश ही न हो। जितने अधिक ऐसे कार्यकर्ता पार्टी में संगठित होंगे, उतने ही सफलता के अवसर अधिक होंगे।

पार्टी को ठीक ढंग से आगे बढ़ाने के लिए जिस बात की सबसे अधिक ज़रूरत है वह यह है कि ऐसे कार्यकर्ता स्पष्ट विचार, प्रत्यक्ष समझदारी, पहलक़दमी की योग्यता और तुरन्त निर्णय कर सकने की शक्ति रखते हों। पार्टी में फौलादी अनुशासन होगा और यह ज़रूरी नहीं कि पार्टी भूमिगत रहकर ही काम करे, बल्कि इसके विपरीत खुले रूप में काम कर सकती है, यद्यपि स्वेच्छा से जेल जाने की नीति पूरी तरह छोड़ दी जानी चाहिए। इस तरह बहुत से कार्यकर्ताओं को गुप्त रूप से काम करते जीवन बिताने की भी ज़रूरत पड़ सकती है, लेकिन उन्हें उसी तरह से पूरे उत्साह से काम करते रहना चाहिए और यही है वह ग्रुप जिससे अवसर सँभाल सकने वाले नेता तैयार होंगे।

पार्टी को कार्यकर्ताओं की ज़रूरत होगी, जिन्हें नौजवानों के आन्दोलनों से भरती किया जा सकता है। इसीलिए नवयुवकों के आन्दोलन सबसे पहली मंज़िल हैं, जहाँ से हमारा आन्दोलन शुरू होगा। युवक आन्दोलन को अध्ययन-केन्द्र (स्टडी सर्किल) खोलने चाहिए। लीफ़लेट, पैम्फ़लेट, पुस्तकें, मैगजीन छापने चाहिए। क्लासों में लेक्चर होने चाहिए। राजनीतिक कार्यकर्ताओं के लिए भरती करने और प्रशिक्षण देने की यह सबसे अच्छी जगह होगी।

उन नौजवानों को पार्टी में ले लेना चाहिए, जिनके विचार विकसित हो चुके हैं और वे अपना जीवन इस काम में लगाने के लिए तैयार हैं। — पार्टी कार्यकर्ता नवयुवक आन्दोलन के काम को दिशा देंगे। पार्टी अपना काम प्रचार से शुरू करेगी। यह अत्यन्त आवश्यक है। ग़दर पार्टी (1914-15) के असफल होने का मुख्य कारण था — जनता की अज्ञानता, लगावहीनता और कई बार विरोध। इसके अतिरिक्त किसानों और मज़दूरों का सक्रिय समर्थन हासिल करने के लिए भी प्रचार ज़रूरी है। पार्टी का नाम कम्युनिस्ट पार्टी हो। ठोस अनुशासन वाली राजनीतिक कार्यकर्ताओं की यह पार्टी बाक़ी सभी आन्दोलन चलायेगी। इसे मज़दूरों व किसानों की तथा अन्य पार्टियों का संचालन भी करना होगा और लेबर यूनियन कांग्रेस तथा इस तरह की अन्य राजनीतिक संस्थाओं पर प्रभावी होने की कोशिश भी पार्टी करेगी। पार्टी एक बड़ा प्रकाशन-अभियान चलायेगी जिससे राष्ट्रीय चेतना ही नहीं, वर्ग चेतना भी पैदा होगी। समाजवादी सिद्धान्तों के सम्बन्ध में जनता को सचेत बनाने के लिए सभी समस्याओं की विषयवस्तु प्रत्येक व्यक्ति की समझ में आनी चाहिए और ऐसे प्रकाशनों को बड़े पैमाने पर वितरित किया जाना चाहिए। लेखन सादा और स्पष्ट हो।

मज़दूर आन्दोलन में ऐसे व्यक्ति हैं जो मज़दूरों और किसानों की आर्थिक और राजनीतिक स्वतन्त्रता के बारे में बड़े अजीब विचार रखते हैं। ये लोग उत्तेजना फैलाने वाले हैं या बौखलाये हुए हैं। ऐसे विचार या तो ऊलजलूल हैं या कल्पनाहीन। हमारा मतलब जनता की आर्थिक स्वतन्त्रता से है और इसी के लिए हम राजनीतिक ताक़त हासिल करना चाहते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि शुरू में छोटी-मोटी आर्थिक माँगों और इन वर्गों के विशेष अधिकारों के लिए हमें लड़ना होगा। यही संघर्ष उन्हें राजनीतिक ताक़त हासिल करने के अन्तिम संघर्ष के लिए सचेत व तैयार करेगा।

इसके अतिरिक्त सैनिक विभाग संगठित करना होगा। यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। कई बार इसकी बुरी तरह ज़रूरत होती है। उस समय शुरू करके आप ऐसा ग्रुप तैयार नहीं कर सकते जिसके पास काम करने की पूरी ताक़त हो। शायद इस विषय को बारीक़ी से समझाना ज़रूरी है। इस विषय पर मेरे विचारों को ग़लत रंग दिये जाने की बहुत अधिक सम्भावना है। ऊपरी तौर पर मैंने एक आतंकवादी की तरह काम किया है, लेकिन मैं आतंकवादी नहीं हूँ। मैं एक क्रान्तिकारी हूँ, जिसके दीर्घकालिक कार्यक्रम-सम्बन्धी ठोस व विशिष्ट विचार हैं जिन पर यहाँ विचार किया जा रहा है। 'शस्त्रों के साथी' मेरे कुछ साथी मुझे रामप्रसाद बिस्मिल की तरह इस बात के लिए दोषी ठहरायेंगे कि फाँसी की कोठरी में रहकर मेरे भीतर कुछ प्रतिक्रिया पैदा हुई है। इसमें कुछ भी सच्चाई नहीं है। मेरे विचार वही हैं, मुझमें वही दृढ़ता है और जो वही जोश व स्पिरिट मुझमें यहाँ है, जो बाहर थी — नहीं, उससे कुछ अधिक है। इसलिए अपने पाठकों को मैं चेतावनी देना चाहता हूँ कि मेरे शब्दों को वे पूरे ध्यान से पढ़ें।

उन्हें पंक्तियों के बीच कुछ भी नहीं देखना चाहिए। मैं अपनी पूरी ताक़त से यह कहना चाहता हूँ कि क्रान्तिकारी जीवन के शुरू के चन्द दिनों के सिवाय न तो मैं आतंकवादी हूँ और न ही था; और मुझे पूरा यक़ीन है कि इस तरह के तरीक़ों से हम कुछ भी हासिल नहीं कर सकते। हिन्दुस्तान समाजवादी रिपब्लिकन पार्टी के इतिहास से यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है। हमारे सभी काम इसी दिशा में थे, यानी बड़े राष्ट्रीय आन्दोलन के सैनिक विभाग की जगह अपनी पहचान करवाना। यदि किसी ने मुझे ग़लत समझ लिया है तो वे सुधार कर लें। मेरा मतलब यह कदापि नहीं है कि बम व पिस्तौल बेकार हैं, वरन् इसके विपरीत, ये लाभदायक हैं। लेकिन मेरा मतलब यह ज़रूर है कि केवल बम फेंकना न सिर्फ़ बेकार, बल्कि नुक़सानदायक है। पार्टी के सैनिक विभाग को हमेशा तैयार रहना चाहिए, ताकि संकट के समय काम आ सके। इसे पार्टी के राजनीतिक काम में सहायक के रूप में होना चाहिए। यह अपने आप स्वतन्त्र काम न करे।

जैसे ऊपर इन पंक्तियों में बताया गया है, पार्टी अपने काम को आगे बढ़ाये। समय-समय पर मीटिंगें और सम्मेलन बुलाकर अपने कार्यकर्ताओं को सभी विषयों के बारे में सूचनाएँ और सजगता देते रहना चाहिए। यदि आप इस तरह से काम शुरू कराते हैं तो आपको काफ़ी गम्भीरता से काम लेना होगा। इस काम को पूरा होने में कम से कम बीस साल लगेंगे। क्रान्ति-सम्बन्धी यौवन काल के दस साल में पूरे होने के सपनों को एक ओर रख दें, ठीक वैसे ही जैसे गाँधी के (एक साल में स्वराज के) सपने को परे रख दिया था। न तो इसके लिए भावुक होने की ज़रूरत है और न ही यह सरल है। ज़रूरत है निरन्तर संघर्ष करने, कष्ट सहने और कुर्बानी भरा जीवन बिताने की। अपना व्यक्तिवाद पहले ख़त्म करो। व्यक्तिगत सुख के सपने उतारकर एक ओर रख दो और फिर काम शुरू करो। इंच-इंच कर आप आगे बढ़ेंगे। इसके लिए, हिम्मत, दृढ़ता और बहुत मज़बूत इरादे की ज़रूरत है। कितने ही भारी कष्ट, कठिनाइयाँ क्यों न हों, आपकी हिम्मत न काँपे। कोई भी पराजय या धोखा आपका दिल न तोड़ सके। कितने भी कष्ट क्यों न आयें, आपका क्रान्तिकारी जोश ठण्डा न पड़े। कष्ट सहने और कुर्बानी करने के सिद्धान्त से आप सफलता हासिल करेंगे और यह व्यक्तिगत सफलताएँ क्रान्ति की अमूल्य सम्पत्ति होगीं।

इंक़लाब-ज़िन्दाबाद!

2 फ़रवरी, 1931

... ...

क्रान्ति

क्रान्ति से हमारा क्या आशय है, यह स्पष्ट है। इस शताब्दी में इसका सिर्फ़ एक ही अर्थ हो सकता है — जनता के लिए जनता का राजनीतिक शक्ति हासिल करना। वास्तव में यही है 'क्रान्ति', बाक़ी सभी विद्रोह तो सिर्फ़ मालिकों के परिवर्तन द्वारा पूँजीवादी सड़ाँध को ही आगे बढ़ाते हैं। किसी भी हद तक लोगों से या उनके उद्देश्यों से जतायी हमदर्दी जनता से वास्तविकता नहीं छिपा सकती, लोग छल को पहचानते हैं। भारत में हम भारतीय श्रमिक के शासन से कम कुछ नहीं चाहते। भारतीय श्रमिकों को — भारत में साम्राज्यवादियों और उनके मददगार हटाकर जो कि उसी आर्थिक व्यवस्था के पैरोकार हैं, जिसकी जड़ें, शोषण पर आधारित हैं — आगे आना है। हम गोरी बुराई की जगह काली बुराई को लाकर कष्ट नहीं उठाना चाहते। बुराइयाँ, एक स्वार्थी समूह की तरह, एक-दूसरे का स्थान लेने के लिए तैयार हैं।

साम्राज्यवादियों को गद्दी से उतारने के लिए भारत का एकमात्र हथियार श्रमिक क्रान्ति है। कोई और चीज़ इस उद्देश्य को पूरा नहीं कर सकती। सभी विचारों वाले राष्ट्रवादी एक उद्देश्य पर सहमत हैं कि साम्राज्यवादियों से आज़ादी हासिल हो। पर उन्हें यह समझाने की भी ज़रूरत है कि उनके आन्दोलन की चालक शक्ति विद्रोही जनता है और उसकी जुझारू कार्रवाईयों से ही सफलता हासिल होगी। चूँकि इसका सरल समाधान नहीं हो सकता, इसलिए स्वयं को छलकर वे उस ओर लपकते हैं, जिसे वे आरजी इलाज, लेकिन झटपट और प्रभावशाली मानते हैं — अर्थात चन्द सैकड़े दृढ़ आदर्शवादी राष्ट्रवादियों के सशक्त विद्रोह के ज़रिये विदेशी शासन को पलटकर राज्य का समाजवादी रास्ते पर पुनर्गठन। उन्हें समय की वास्तविकता में झाँककर देखना चाहिए। हथियार बड़ी संख्या में प्राप्त नहीं हैं और जुझारू जनता से अलग होकर अशिक्षित गुट की बग़ावत की सफलता का इस युग में कोई चांस नहीं है। राष्ट्रवादियों की सफलता के लिए उनकी पूरी क़ौम को हरक़त में आना चाहिए और बग़ावत के लिए खड़ा होना चाहिए। क़ौम कांग्रेस के लाउडस्पीकर नहीं हैं, वरन वे मज़दूर-किसान हैं जो भारत की 95 प्रतिशत जनसंख्या है। राष्ट्र स्वयं को राष्ट्रवाद के विश्वास पर ही हरक़त में लायेगा, यानी साम्राज्यवाद और पूँजीपति की गुलामी से मुक्ति का विश्वास दिलाने से।

हमें याद रखना चाहिए कि श्रमिक क्रान्ति के अतिरिक्त न किसी और क्रान्ति की इच्छा करनी चाहिए और न ही वह सफल हो सकती है।

... ...

क्रान्तिकारी पार्टी

क्रान्तिकारियों के सक्रिय ग्रुप की मुख्य ज़िम्मेदारी, जनता तक पहुँचने और उन्हें सक्रिय बनाने की तैयारी में होती है। यही हैं वे चलते-फिरते दृढ़ इरादों के लोग जो राष्ट्र को जुझारू जीवनी शक्ति देंगे। ज्यों-ज्यों परिस्थितियाँ पकती हैं तो इन्हीं क्रान्तिकारी बुद्धिजीवियों - जो बुर्जुआ व पेटी बुर्जुआ वर्ग से आते हैं और कुछ समय तक इसी वर्ग से आते भी रहेंगे, लेकिन जिन्होंने स्वयं को इस वर्ग की परम्पराओं से अलग कर लिया होता है — से क्रान्तिकारी पार्टी बनेगी और फिर इसके गिर्द अधिक से अधिक सक्रिय मज़दूर-किसान और छोटे दस्तकार राजनीतिक कार्यकर्ता जुड़ते रहेंगे। लेकिन मुख्य तौर पर यह क्रान्तिकारी बुद्धिजीवियों, स्त्रियों व पुरुषों की पार्टी होगी, जिनकी मुख्य ज़िम्मेदारी यह होगी कि वे योजना बनायें, फिर उसे लागू करें, प्रोपेगैण्डा या प्रचार करें, अलग-अलग यूनियनों में काम शुरू कर उनमें एकजुटता लायें, उनके एकजुट हमले की योजना बनायें, सेना व पुलिस को क्रान्ति-समर्थक बनायें और उनकी सहायता या अपनी अन्य शक्तियों से विद्रोह या आक्रमण की शक्ल में क्रान्तिकारी टकराव की स्थिति बनायें, लोगों को विद्रोह के लिए प्रयत्नशील करें और समय पड़ने पर निर्भीकता से नेतृत्व दे सकें।

वास्तव में वही आन्दोलन का दिमाग़ हैं। इसीलिए उन्हें दृढ़ चरित्र की ज़रूरत होगी, यानी पहलक़दमी और क्रान्तिकारी नेतृत्व की क्षमता। उनकी समझ राजनीतिक, आर्थिक और ऐतिहासिक समस्याओं, सामाजिक रुझानों, प्रगतिशील विज्ञान, युद्ध के नये वैज्ञानिक तरीक़ों और उसकी कला आदि के अनुशासित भाव से किये गये गहरे अध्ययन पर आधारित होनी चाहिए। क्रान्ति का बौद्धिक पक्ष हमेशा दुर्बल रहा है, इसलिए क्रान्ति की अत्यावश्यक चीज़ों और किये कामों के प्रभाव पर ध्यान नहीं दिया जाता रहा। इसलिए एक क्रान्तिकारी को अध्ययन-मनन अपनी पवित्र ज़िम्मेदारी बना लेना चाहिए।

... ...

ऊपर बताये गये कार्यक्रम से यह निष्कर्ष निकालना सम्भव है कि क्रान्ति या आज़ादी के लिए कोई छोटा रास्ता नहीं है। 'यह किसी सुन्दरी की तरह सुबह-सुबह हमें दिखायी नहीं देगी' और यदि ऐसा हुआ तो वह बड़ा मनहूस दिन होगा। बिना किसी बुनियादी काम के, बग़ैर जुझारू जनता के और बिना किसी पार्टी के, अगर (क्रान्ति) हर तरह से तैयार हो, तो यह एक असफलता होगी। इसीलिए हमें स्वयं को झिंझोड़ना होगा। हमें हमेशा यह याद रखना चाहिए कि पूँजीवादी व्यवस्था चरमरा रही है और तबाही की ओर बढ़ रही है। दो या तीन साल में शायद इसका विनाश हो जाये। यदि आज भी हमारी शक्ति बिखरी रही और क्रान्तिकारी शक्तियाँ एकजुट होकर न बढ़ सकीं तो ऐसा संकट आयेगा कि हम उसे सँभालने के लिए तैयार नहीं होंगे। आइए, हम यह चेतावनी स्वीकार करें और दो या तीन वर्ष में क्रान्ति की ओर आगे बढ़ने की योजना बनायें।

फ़रवरी, 1931

मज़दूरों के अपने लेखक
मक्सिम गोर्की
की कहानी

हड़ताल

नेपल्ज़ के ट्राम-कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी थी। रिव्येरा क्याया सड़क की पूरी लम्बाई में ट्राम के खाली डिब्बे खड़े थे और विजय-चौक में ड्राइवरों तथा कण्डक्टरों की भीड़ जमा थी – बड़े ही खुशमिजाज, हो-हल्ला करनेवाले और पारे की तरह चंचल नेपल्जवासियों की भीड़। इन लोगों के सिरों और बाग के जंगले के ऊपर तलवार की तरह पतली फव्वारे की धार हवा में चमक रही थी। जिन लोगों को इस बड़े नगर के सभी भागों में काम-काज से जाना था, उनकी भारीभीड़ शत्रुता की भावना अनुभव करते हुए इन हड़तालियों को घेरे थी। ऐसे सभी कारिन्दे, कारीगर, छोटे-मोटे व्यापारी और दर्जी, आदि हड़तालियों को ऊँचे-ऊँचे और खीझते हुए भला-बुरा कह रहे थे। गुस्से से भरे शब्द, चुभते व्यंग्य-वाक्य हवा में गूँज रहे थे हाथ लगातार लहरा रहे थे जिनकी मदद से नेपलजवासी कभी न रुकनेवाली अपनी जबान की तरह ही बहुत अभिव्यक्तिपूर्ण तथा अच्छे ढंग से अपने को व्यक्त करते हैं।

सागर की ओर से मन्द-मन्द समीर बह रहा था। नगर-उपवन के बहुत बड़े-बड़े ताड़ वृक्ष गहरे हरे रंग की अपनी शाखाओं के पंखों को धीरे-धीरे हिला रहे थे। इन ताड़ वृक्षों के तने भीमकाय हाथियों के भद्दे पैरों से बहुत मिलते-जुलते थे। बच्चे-नेपल्ज की सड़कों-गलियों के अधनंगे बच्चे – गौरैयों की तरहे फुदक रहे थे, हवा को अपनी किलकारियों और- ठहाकों से गुँजा रहे थे।

नक्काशी की प्राचीन कलाकृति से मिलता-जुलता शहर रश्मि-स्नात था और पूरे का पूरा मानो आर्गन बाजे के संगीत में डूबा था। खाड़ी की नीली लहरें तट-बन्ध से टकराती थीं, खंजड़ी जैसी छनक पैदा करती हुई लोगों के शोर और चीख-चिल्लाहट का साथ देती थीं।

भीड़ की गुस्से भरी आवाजों का लगभग जवाब दिये बिना हड़ताली एक-दूसरे के साथ सटते जाते थे, बाग के जंगले पर चढ़कर लोगों के सिरों के ऊपर से सड़क की ओर बेचैनी से देखते थे और कात्तों से घिरे हुए भेडियों जैसे लगते थे। सभी यह जानते थे कि एक जैसी वर्दी पहने हुए हड़ताली इस दृढ़ निर्णय के सूत्र में कसकर बँधे हुए हैं कि किसी भी हालत में कदम पीछे नहीं हटायेंगे और भीड़ को इस बात से और भी अधिक गुस्सा आ रहा था। किन्तु भीड़ में कुछ दार्शनिक किस्म के लोग भी थे जो बड़े इत्मीनान से सिगेरट का धुआँ उड़ाते हुए हड़ताल के बहुत ही कट्टर विरोधियों के साथ इस प्रकार तर्क-वितर्क कर रहे थे:

"अजी महानुभाव! अगर बच्चों को सेवैयाँ तक खिलाने को पैसे काफी न हों तो आदमी करे भी तो क्या?"

नगरपालिका के बने-ठने पुलिसवाले दो-दो, तीन-तीन की टोलियों में खड़े हुए इस बात की ओर ध्यान दे रहे थे कि लोगों की भीड़ के कारण ट्रामों की गतिविधि में बाधा न पडे। वे कड़ाई से तटस्थता का अनुकरण कर रहे थे, हड़तालियों तथा हड़ताल-विरोधियों को एक जैसी शान्त नजर से देखते थे। और जब चीख-चिल्लाहट तथा हाव-भाव बहुत ही उग्र रूप धारण कर लेते थे तो दोनों पक्षों का खुशमिजाजी से मजाक उड़ाते थे। कोई गम्भीर भिडन्त हो जाने की हालत में दखल देने को तैयार फौजी-पुलिस के दस्ते छोटी-छोटी और हल्की-हल्की बन्दूकें हाथ में लिये हुए पास की तंग-सी गली के घरों की दीवार के साथ सटे खड़े थे। तिकोने टोप, छोटे-छोटे लबादे और पतलूनों पर रक्त की दो धाराओं जैसी पट्टियोंवाले पतलून पहने ये लोग खासे मनहूस लग रहे थे।

आपसी तू-तू मैं-मैं, ताने-बोलियाँ, व्यंग्य और तर्क-वितर्क – अचानक यह सब कुछ बन्द हो गया, लोगों में एक नयी, मानो शान्ति देनेवाली भावना की लहर-सी दौड़ गयी, हड़तालियों के चेहरों पर अधिक गम्भीरता छा गयी, साथ ही वे एक-दूसरे के अधिक निकट हो गये और भीड़ चिल्ला उठी:

"फौजी आ गये!"

हड़तालियों को मजाक उड़ाती और खुशी भरी सीटियाँ सुनायी दीं, अभिवादन के नारे गूँज उठे और हल्के भूरे रंग का सूट तथा पानामा टोपी पहने कोई मोटा-सा आदमी पत्थरों की सड़क पर पाँव बजाता हुआ उछलने-कूदने लगा। कण्डक्टर और ट्राम-ड्राइवर भीड़ को चीरते हुए धीरे-धीरे ट्रामों की तरफ बढ़ने लगे, उनमें से कुछेक तो पायदानों पर चढ़ भी गये – वे पहले से भी ज्यादा संजीदा हो गये थे और भीड़ की आवाजों का कठोरता से जवाब देते हुए उसे रास्ता देने को मजबूर कर रहे थे। खामोशी छा गयी।

तटवर्ती साण्टा लुचीया की ओर से भूरी वर्दियाँ पहने छोटे-छोटे फौजी नाच की तरह हल्के-फुल्के कदम बढ़ाते, पाँवों से लयबद्ध आवाज पैदा करते और बायें हाथों को एक ही ढंग से यन्त्रवत् हिलाते हुए चले आ रहे थे। वे मानो टीन के बने हुए और चाबी से चलनेवाले खिलौनों की तरह आसानी से टूट जानेवाले प्रतीत हो रहे थे। त्योरियाँ चढ़ाये और होंठों पर तिरस्कारपूर्वक बल डाले हुए ऊँचे कद का एक सुन्दर अफसर इनका नेतृत्व कर रहा था। ऊँचा टोप पहने, लगातार कुछ बोलता और हाथों के असंख्य संकेतों से हवा को चीरता हुआ एक मोटा-सा आदमी उसके साथ-साथ उछलता और दोड़ता चला आ रहा था।

भीड़ तेजी से ट्रामों से दूर हट गयी – भूरे रंग की माला के मनकों की तरह फौजी पायदानों के पास रुकते हुए, जहाँ हड़ताली खड़े थे, डिब्बों के निकट बिखर गये।

ऊँचे टोप वाले को घेरे हुए कुछ अन्य धीर-गम्भीर लोग हाथों को जोर से हिलाते हुए चिल्ला रहे थे: "आखिरी बार... Ultima volta!* सुन रहे हैं ना?"

अफसर एक ओर को सिर झुकाये हुए ऊबभरे ढंग से अपनी मूँछों पर ताव दे रहा था। ऊँचे टोप को हिलाता और भागता हुआ वह व्यक्ति उसके पास आया और उसने खरखरी आवाज में चिल्लाकर कुछ कहा। अफसर ने तिरछी नजर से उसकी तरफ देखा, तनकर खड़ा हो गया, उसने छाती को अकड़ाया और ऊँची आवाज में आदेश देने लगा।

ऐसा होते ही फौजी उछलकर ट्रामों के पायदानों पर दो-दो की संख्या में चढ़ने लगे और इसी समय ट्राम-ड्राइवर और कण्डक्टर नीचे कूद गये।

भीड़ को यह दिलचस्प मजाक-सा प्रतीत हुआ – लोग चीखने-चिल्लाने, सीटियाँ बजाने और ठहाके लगाने लगे। किन्तु यह सब एकाएक शान्त हो गया और लोग गम्भीर तथा तनावपूर्ण चेहरे बनाये और हैरानी से आँखें फैलाये हुए भारी मन से ट्रामों से पीछे हटने लगे और सबसे आगे खड़ी ट्राम की ओर बढ़ चले।

सभी को यह साफ दिखायी देने लगा कि ट्राम के पहियों से दो कदम की दूरी पर पके बालोंवाला एक ड्राइवर, जिसका चेहरा फौजियों जेसा था, सिर से टोपी उतारकर लाइनों के आर-पार चित्त लेटा हुआ है और चुनौती देती-सी उसकी मूंछे आकाश को ताक रही हैं। बन्दर की तरह चुस्त-फुर्तीला, एक नाटा-सा तरुण भी उसके पास लेट गया और उसके बाद अन्य लोग भी इत्मीनान से वहीं लेटते चले गये...

भीड़ में दबी-घुटी भनभनाहट थी, मादोन्ना का आह्वान करती हुई भयभीत-सी आवाजें गूँज उठती थीं, कुछ लोग झल्लाकर भला-बुरा भी कहते, औरतें चीखतीं और आहें भरतीं और इस दृश्य से आश्चर्यचकित छोकरे रबड़ के गेंदों की तरह उछल रहे थे।

ऊँचा टोप पहने व्यक्ति सिसकती-सी आवाज में कुछ चिल्लाया, अफसर ने उसकी ओर देखकर कन्धे झटके – अफसर को ड्राइवरों की जगह पर अपने फौजी तैनात करने चाहिए थे, किन्तु उसके पास हड़तालियों के विरुद्ध संघर्ष करने का आदेश-पत्र नहीं था।

तब ऊँचे टोपवाला व्यक्ति जी-हुजूरी करनेवाले कुछ आदमियों को साथ लिये हुए फौजी पुलिसियों की ओर लपका – वे अपनी जगहों से हिले, पटरियों पर लेटे हुए लोगों के पास आये और उन्हें वहाँ से उठाने के इरादे से उन पर झुक गये।

कुछ हाथापाई और झगड़ा हुआ, लेकिन अचानक धूल से लथपथ दर्शकों की सारी भीड़ हिली-डुली, चीखी-चिल्लायी और ट्राम की पटरियों की ओर भाग चली। पनामा टोपी पहने हुए व्यक्ति ने टोपी सिर से उतारी, उसे हवा में उछाला, हड़ताली का कन्धा थपथपाकर तथा ऊँची आवाज में उसे प्रोत्साहन के कुछ शब्द कहकर सबसे पहले उसके निकट लेट गया।

उसके बाद खुशमिजाज और शोर मचाते हुए कुछ लोग, ऐसे लोग जो दो मिनट पहले तक वहाँ नहीं थे, ट्राम की पटरियों पर ऐसे गिरने लगे मानो उनकी टाँगें काट दी गयी हों। वे जमीन पर लेटते, हँसते हुए एक-दूसरे की ओर देखकर मुँह बनाते और चिल्लाकर अफसर से कुछ कहते जो ऊँचे टोपवाले व्यक्ति के सामने अपने दस्ताने फटकारता, व्यंग्यपूर्वक हँसता और सुन्दर सर को झटकता हुआ कुछ कह रहा था।

अधिकाधिक लोग पटरियों पर लेटवे जाते थे, औरतें अपनी टोकरियाँ और पोटलियाँ फेंक रही थीं, हँसी से लोट-पोट होते हुए छोत्तरे ठिठुरे पिल्लों की तरह गुडी-मुड़ी हो रहे थे और अच्छे कपड़े पहने लोग भी दायें-बायें करवट लेते हुए धूल में लोट रहे थे।

पहली ट्राम से पाँच फौजियों ने बहुत-से लोगों को पहियों के नीचे लेटे देखा, हँसी के मारे उनको बुरा हाल हो रहा था, वे हैंडलों को थामकर डोलते हुए, सिरों को पीछे की ओर झटकते तथा आगे की तरफ झुकते हुए जोर के ठहाके लगा रहे थे। अब वे टीन के बने खिलौनों जैसे बिल्कुल नहीं लग रहे थे।

...आध घण्टे के बाद शोर मचाती, चीं-चूँ की आवाज पैदा करती हुई ट्रामें सारे नेपल्ज में चल रही थीं, उनके पायदानों पर खुशी से मुस्कुराते हुए विजेता खड़े थे और डिब्बों के साथ-साथ चलते हुए भी वही बड़ी शिष्टता से पूछ रहे थे:

"टिकट?!"

उनकी ओर लाल और पीले नोट बढ़ाते हुए लोग आँखें मिचमिचाते थे, मुस्कुराते थे, खुशमिजाजी से बड़बड़ाते थे।

---

* अल्टीमेटम! (इतावली)

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2023-2026
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

जीएसटी 2.0 : पाँव के नीचे से ज़मीन खिसकती देखकर मोदी-शाह सरकार द्वारा जनता के साथ एक और धोखाधड़ी

● नीशू

3 सितम्बर को जीएसटी परिषद की बैठक में वित्त मन्त्री निर्मला सीतारमण ने जीएसटी दरों में बदलाव को लेकर बड़ी-बड़ी घोषणाएँ की, जिसमें चार जीएसटी स्लैब की जगह दो यानी 5 प्रतिशत और 18 प्रतिशत वाले स्लैब को मंजूरी दी। 12 और 28 प्रतिशत दर वाली जीएसटी को ख़त्म कर दिया गया। इसके साथ ही 40 प्रतिशत के नये जीएसटी दर को लागू किया जो 'सिन गुड्स' पर यानी नुकसानदेह व लक्ज़री वस्तुओं व सेवाओं पर लगेगा। इसके बाद तो पूरा गोदी मीडिया मोदी जी के गुणगान करने में जुट गया मानो मोदी जी ने जनता पर कितना बड़ा "उपकार" कर दिया है! कितना "बड़ा दिवाली गिफ़्ट" दिया है! सड़कों और हाईवे के किनारे सरकार को बधाई देते हुए बड़े-बड़े होर्डिंग टाँग दिए गये। इतना ही नहीं ऑटो बनाने वाली कम्पनियों को कहा है कि वे अपने शोरूम में जीएसटी दरों में कटौती के पोस्टर्स मोदी जी की फोटो के साथ लगा कर रखें। फिक्की, एसोचैम, सीआईआई, आईपीए सब मोदी जी को हाथ जोड़कर, डबडबाई आँखों से धन्यवाद दे रहे हैं। ऐसे में जर्मनी के कवि बेर्टोल्ट ब्रेष्ट की कविता याद आती है:

प्रचार के मक़सद के बारे में
और एक बात लाज़िमी है:
प्रचार जितना बढ़ता जाता है,
बाक़ी सारी चीज़ें उतनी ही
घटने लगती हैं

मोदी जी के इस "दिवाली उपहार" की असलियत क्या है, वाकई महँगाई कम होगी? आख़िर जीएसटी है क्या और यह किसके लिए फ़ायदेमन्द है? आइए जानते हैं।

जीएसटी मूलत: एक प्रकार की अप्रत्यक्ष कर है जो वस्तुओं और सेवाओं पर लगाया जाता है। जो सामान या सेवा हम ख़रीदते हैं जैसे साबुन, तेल, टूथपेस्ट, नमक, दूध का पैकेट, किताबें, पेन, कपड़े, सेवाएँ जैसे परिवहन, जिम आदि में अप्रत्यक्ष कर शामिल होता है। 1 जुलाई 2017 को मोदी सरकार ने आधी रात को संसद में स्पेशल सेशन बुलाकर 'गुड्स एण्ड सर्विसेज टैक्स' (जीएसटी) लागू कर दिया और एक देश एक टैक्स जैसे भ्रामक नारे दिये। सरकार द्वारा इसको दूसरी आज़ादी घोषित कर दिया गया। लेकिन दूसरी आज़ादी के नाम पर देश की जनता की जेब पर भयंकर डाका डाला गया। जीएसटी चूँकि आय या सम्पत्ति पर नहीं, वस्तुओं और सेवाओं पर लगता है इसलिए इसका ज़्यादातर बोझ मेहनतकश जनता पर ही पड़ता है। ऑक्सफ़ैम की रिपोर्ट के मुताबिक, देश की 50 प्रतिशत ग़रीब जनता जीएसटी का दो तिहाई भार उठाती है वहीं अमीर वर्ग मात्र 3 प्रतिशत जीएसटी देते हैं। भारत में अमीरी और ग़रीबी का अन्तर पहले से कहीं ज़्यादा गहरा होता जा रहा है। यह ब्रिटिश औपनिवेशिक काल से भी बदतर है। आँकड़ों के अनुसार, "शीर्ष 1 प्रतिशत के पास भारत की 40.1 प्रतिशत सम्पत्ति है। निचले 50 प्रतिशत के पास केवल 6.4 प्रतिशत है। शीर्ष 10 प्रतिशत राष्ट्रीय आय का 57.7 प्रतिशत से अधिक कमाते हैं।" यह स्पष्ट विभाजन दर्शाता है कि लगभग आधी आबादी न्यूनतम संसाधनों के साथ संघर्ष कर रही है, जबकि एक छोटा सा अभिजात वर्ग अच्छी-ख़ासी सम्पत्ति का आनन्द ले रहा है। देश में इस स्तर की असमानता की स्थिति में एक देश एक टैक्स जैसी नीति फ़ासिस्टों के जन विरोधी चरित्र को उजागर करती है।

मोदी जी के "दिवाली गिफ़्ट" की असलियत

भारत सरकार ने हालिया जीएसटी (वस्तु एवं सेवा कर) में किये गये फेरबदल को "दिवाली गिफ़्ट" बताकर पेश किया है। 22 सितम्बर 2025 से लागू होने जा रहे (यह कितना लागू हो पायेगा यह भी देखना होगा) इस ढाँचे के तहत जीएसटी काउंसिल ने पहले की चार दरों—5 प्रतिशत, 12 प्रतिशत, 18 प्रतिशत और 28 प्रतिशत—को घटाकर दो मुख्य स्लैब में बदल दिया है: 5 प्रतिशत और 18 प्रतिशत। इसके साथ ही तथाकथित लक्ज़री और अहितकर वस्तुएँ ("sin" goods) पर नया 40 प्रतिशत का "डि-मेरिट" स्लैब भी जोड़ा गया है। याद रहे, चार की जगह दो नहीं अब तीन स्लैब हैं।

वित्त मन्त्रालय के अधिकारियों का दावा है कि इससे "कर प्रणाली सरल" होगी और आम परिवारों पर बोझ कम होगा। सवाल आना लाज़िमी है कि आख़िर अभी तक आम परिवारों के ऊपर बोझ क्यों लादा जा रहा था! जीएसटी दरों में कटौती असलियत में किसी 'गिफ़्ट' से ज़्यादा, केवल एक तकनीकी फेरबदल है, जो भारत की मौजूदा राजकोषीय संरचना को—जो पहले से ही नई आर्थिक नीतियों की दिशा में ढली हुई है—ज्यों का त्यों बनाये रखता है।

पहली नज़र में लगता है कि कुछ रोज़मर्रा की ज़रूरतें 5 प्रतिशत स्लैब में लायी गयी हैं, जबकि बड़ी संख्या में वस्तुएँ और सेवाएँ 18 प्रतिशत पर ही रहेंगी। 40 प्रतिशत दर लक्ज़री कार, कोल्ड ड्रिंक और तंबाकू जैसे उत्पादों पर लगायी जाएगी। लेकिन जीएसटी पर लगने वाले उपकर (सेस) बने रहेंगे, और उन्हें बढ़ाकर कई मामलों में दरों में कटौती का असर निष्फल किया जा सकता है। निर्मला ताई ने एलान किया है कि जीएसटी के दो स्लैब, 12 और 28 प्रतिशत ख़त्म कर दिए जाएँगे। लेकिन अब भी 12 प्रतिशत के स्लैब वाले कुछ मालों तथा सेवाओं पर 5 प्रतिशत कर लगेगा और अब तक जिन पर 28 प्रतिशत कर लगता था, उन पर 18 प्रतिशत कर लगेगा। सोचने वाली बात है कि पिछले आठ सालों से यह सरकार मानचित्र, चार्ट, ग्लोब, पेंसिल, शार्पनर, क्रेयॉन, अभ्यास पुस्तिकाएँ और नोटबुक जैसी शैक्षिक वस्तुओं पर 12 प्रतिशत जीएसटी ले रही थी। यही नहीं कैंसर सहित अन्य जीवन रक्षक दवाओं पर 12 प्रतिशत और थर्मामीटर पर 18 प्रतिशत जीएसटी ले रही थी। अभी भी ऑक्सीजन, थर्मामीटर, डायग्नोस्टिक किट, ज्योमेट्री बॉक्स, कलर बॉक्स और स्केच पेन आदि पर 5 प्रतिशत जीएसटी लेगी सरकार। तो मोदी जी के बड़े से दिवाली "गिफ़्ट" के डिब्बे के अन्दर जनता के लिये केवल झुनझुना है।

मनीकण्ट्रोल में छपी रिपोर्ट के मुताबिक, कम्पनियों ने कहा है कि कुछ ख़ास प्रोडक्ट्स जैसे 5 रुपये के बिस्कुट, 10 रुपये के साबुन या 20 रुपये के टूथपेस्ट की क़ीमतें नहीं घटाई जायेंगी। कम्पनियों का कहना है कि "भारतीय ख़रीदार इन स्टैण्डर्ड क़ीमतों से अच्छी तरह से वाक़िफ़ हैं। इन सामानों को ख़रीदने के आदी हो चुके हैं। क़ीमत को 10 या 20 रुपये के बजाय 9 या 18 रुपये करने से उन्हें 'कन्फ्यूजन' होगा। इससे ख़रीदारी करने की उनकी आदत भी बिगड़ सकती है।" दिवाली गिफ़्ट के नाम पर जीएसटी दरों में हुए ये "सुधार" भी जनता तक पहुँच पायेंगे इसमें भी सन्देह है।

सच तो यह है कि जीएसटी में "सुधार" से कोई बुनियादी फ़र्क नहीं आयेगा और महँगाई दर में मामूली-सा अन्तर आयेगा, जबकि ज़रूरत यह थी कि इन अप्रत्यक्ष करों को समाप्त या लगभग समाप्त किया जाता, विशेष तौर पर उन वस्तुओं और सेवाओं पर जिनका उपयोग आम तौर पर आम मेहनतकश जनता करती है। शिक्षा, चिकित्सा, आदि बुनियादी सुविधाओं और उनसे जुड़ी वस्तुओं व सेवाओं पर तो जीएसटी लगाने का कोई अर्थ ही नहीं है। मोदी सरकार ने उन्हें ख़त्म करने के बजाय उनमें मामूली-सी कमी की है और इसी का डंका बजाकर श्रेय लेने की कोशिश कर रही है।

जीएसटी दरों में कटौती की असली वजह

आने वाले छह महीनों के भीतर बिहार और प. बंगाल में चुनाव होने वाले हैं। 2024 के लोकसभा चुनावों में वोट चोरी करने के बावजूद भाजपा मुश्किल से 240 सीटें ही हासिल कर सकी थी, वहीं वोटों की चोरी का ख़ुलासा होने के बाद ज़मीन खिसकती नज़र आ रही है। स्वतन्त्रता दिवस पर मोदी ने ख़ूब झूठ बोले और जमकर लफ़्फ़ाजी की और दावा किया कि भाजपा के राज में विनिर्माण के क्षेत्र ने बहुत बड़े डग भरे हैं, जबकि सच्चाई यह है कि पिछले दस साल में जीडीपी के अनुपात के रूप में विनिर्माण क्षेत्र के हिस्से में भारी गिरावट आयी है और यह 17.5 फ़ीसद से गिरकर, 12.6 फ़ीसद रह गया है। भारत में असंगठित क्षेत्र में काम करने वाली 93 प्रतिशत आबादी के पास न तो कोई आर्थिक सुरक्षा है और न ही कोई सामाजिक सुरक्षा। समाज का हर तबका छात्र, मज़दूर, स्कीम वर्कर्स आज महँगाई से त्रस्त है। गोदी मीडिया मोदी सरकार के पक्ष में माहौल तैयार करने की चाहे जितनी भी कोशिश कर ले, जनता अपनी ज़िन्दगी की रोज़मर्रा की तकलीफ़ों से समझ रही है।

जनता का गुस्सा कहीं सड़कों पर न फूट पड़े इसलिए फ़ासिस्ट सरकार को अपने आकाओं की लूट में से मामूली कटौती करनी पड़ रही है।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016

(पेज 2 पर जारी)